धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

वर्ष–86 । अंक–7 । ₹–19 प्रति । ₹–220 वार्षिक

अखण्ड ज्योति 75 वर्ष पूर्व

जुलाई—1947
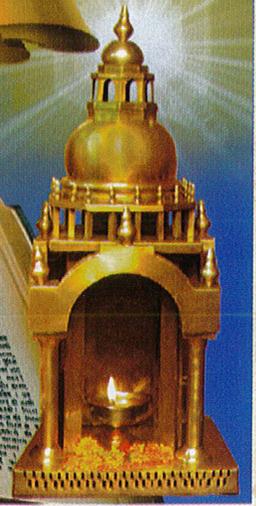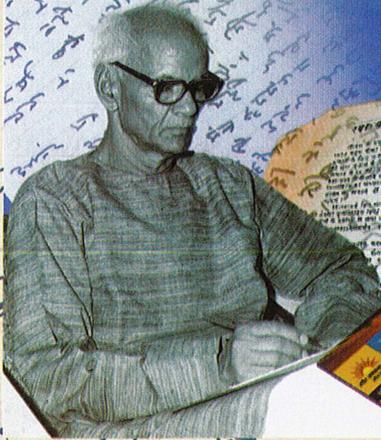
सत्य की अकूत शक्ति पर विश्वास कीजिए

"जो अपनी आत्मा के आगे सच्चा है, जो अपनी अंतरात्मा की आवाज के अनुसार आचरण करता है, जो बनावट, धोखेबाजी, चालाकी को तिलांजलि देकर ईमानदारी को अपनी जीवन-नीति अपनाए हुए है, वह इस दुनिया का सबसे बुद्धिमान व्यक्ति है। क्योंकि सत्य को अपनाने से मनुष्य शक्ति का पुंज बन जाता है। महात्मा कन्फ्यूशियस कहा करते थे कि सत्य में हजार हाथियों के बराबर बल है। परंतु वस्तुतः सत्य में अपार बल है। उसकी समता भौतिक सृष्टि के किसी भी बल से नहीं हो सकती।

स्मरण रखिए, झूठ आखिर झूठ ही है। वह आज नहीं तो कल जरूर खुल जाएगा। असत्य का जब भंडाफोड़ होता है तो उससे मनुष्य की सारी प्रतिष्ठा नष्ट हो जाती है। उसे अविश्वासी, टुच्चा और ओछा आदमी समझा जाने लगता है। झूठ बोलने में तात्कालिक थोड़ा लाभ दिखाई पड़े तो भी आप उसकी ओर ललचाइए मत, क्योंकि उस थोड़े लाभ के बदले में अंततः अनेक गुनी हानि होने की संभावना है।

आप अपने वचन और कार्यों द्वारा सच्चाई का परिचय दीजिए। सत्य उस बीज के समान है, जो आज छोटा दीखता है, पर अंत में फल-फूलकर विशाल वृक्ष बन जाता है। जो ऊँचा, प्रतिष्ठायुक्त और सुख-शांति का जीवन बिताने के इच्छुक हों, उनका दृढ़ निश्चय होना चाहिए कि हमारे वचन और कार्य सच्चाई से भरे हुए होंगे।"

— पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य
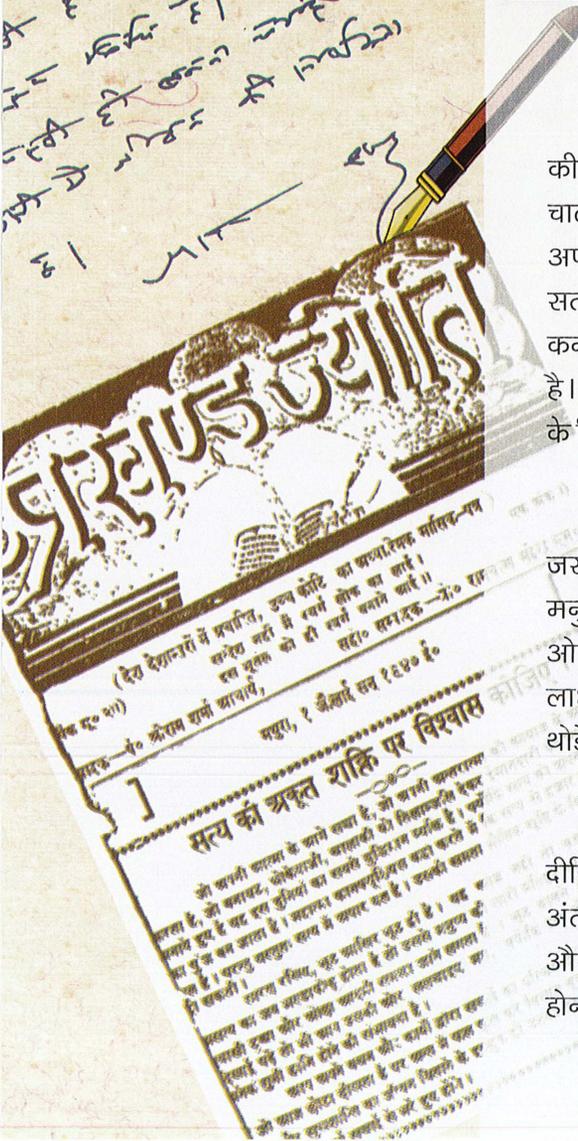
संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
घीयामंडी, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2402574
2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ईमेल-
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org
प्रात: 10 से सायं 6 तक

वर्ष	:	86
अंक	:	07
जुलाई	:	2022
आषाढ़-श्रावण	:	2079
प्रकाशन तिथि	:	01.06.2022
वार्षिक चंदा		
भारत में	:	220/-
विदेश में	:	1600/-
आजीवन (बीसवर्षीय)		
भारत में	:	5000/-

मनोबल

शारीरिक बल को बढ़ाने के लिए लोग आहार, व्यायाम एवं अन्य उपचारों का सहयोग लेते हैं। सत्य यह है कि मनोबल की आवश्यकता इससे कहीं ज्यादा हो जाती है; क्योंकि मन का नियंत्रण संपूर्ण शरीर पर होता है। मन के बल से ही स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण शरीरों का निर्माण होता है। यदि मनोबल चुक जाए तो जीवन में उसके परिणाम पतन एवं पराभव के रूप में देखने को मिलते हैं। हारा हुआ मन मनुष्य के जीवन को निराशा से भर देता है और तरह-तरह के भय, आशंकाएँ—मनुष्य को चिंताओं और परेशानियों से ग्रसित बना देते हैं।

इसके विपरीत जिनके मनोबल ऊँचे होते हैं—वे गांधी और विनोबा की तरह से कमजोर शारीरिक बल के बावजूद बड़े-बड़े कार्य करते दिखाई पड़ते हैं। मनोबल गिर जाने पर व्यक्ति साधारण कार्यों को पहाड़ की तरह से भारी मानकर बैठ जाते हैं और मनोबल मजबूत होने पर व्यक्ति जिस कार्य को हाथ में लेते हैं, उसे पूर्ण करके ही दिखाते हैं। इतिहास ऐसे ही महापुरुषों की गाथा से भरा पड़ा है, जिनके पास न शारीरिक बलिष्ठता थी, न आर्थिक संपन्नता थी, परंतु वे आत्मविश्वास के सहारे आगे बढ़ते गए और दृढ़ संकल्प के साथ अपने जीवनलक्ष्य की पूर्ति करते चले गए।

साधना-पथ के पथिकों के लिए मनोबल की आवश्यकता सर्वोपरि हो जाती है। प्रतिकूलताओं से जूझकर उनको अनुकूलताओं में बदलना उनका ही कार्य होता है। मनोबल बढ़ाना अध्यात्म पथ के हर पथिक के लिए जरूरी है, जिसको इस प्रयास में सफलता मिल गई, उसे हर कार्य में सफलता मिलकर रहती है। ❑

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

विषय सूची

आवरण पृष्ठ परिचय

हमारी गुरुसत्ता एवं उनके स्मारक

जुलाई-अगस्त, 2022 के पर्व-त्योहार

शुक्रवार	01 जुलाई	रथयात्रा	सोमवार	08 अगस्त	पवित्रा एकादशी
मंगलवार	05 जुलाई	सूर्य षष्ठी	शुक्रवार	12 अगस्त	रक्षाबंधन
रविवार	10 जुलाई	देवशयनी एकादशी	सोमवार	15 अगस्त	स्वतंत्रता दिवस/बहुला चौथ
बुधवार	13 जुलाई	गुरु पूर्णिमा	बुधवार	17 अगस्त	हल षष्ठी
रविवार	24 जुलाई	कामिका एकादशी	शुक्रवार	19 अगस्त	श्रीकृष्ण जन्माष्टमी
गुरुवार	28 जुलाई	हरियाली अमावस्या	मंगलवार	23 अगस्त	अजा एकादशी
मंगलवार	02 अगस्त	नाग पंचमी	शुक्रवार	26 अगस्त	कुशाग्रहणी अमावस्या
बुधवार	03 अगस्त	सूर्य षष्ठी	मंगलवार	30 अगस्त	हरतालिका व्रत
गुरुवार	04 अगस्त	तुलसी जयंती	बुधवार	31 अगस्त	श्री गणेश चतुर्थी

यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे। —*संपादक*

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

विशिष्ट सामयिक चिंतन

वास्तविक अध्यात्म के पथ का चिंतन

दिखने में हमारा यह मनुष्य शरीर अन्य प्राणियों के शरीर की तुलना में थोड़ा ज्यादा विकसित जरूर दिखता है, परंतु यदि ध्यान से देखें तो इस मनुष्य जीवन की कीमत इस शरीर के कारण नहीं, बल्कि इसमें प्रवाहित हो रही शाश्वत प्राण चेतना के कारण ज्यादा है। यह शरीर बड़े आघातों को झेल पाने की स्थिति में नहीं है—एक छोटा-सा विषाणु भी इसको बुरी तरह से ध्वस्त कर सकता है, परंतु जिस कारण से मनुष्य जीवन को देवदुर्लभ बताया गया है और शास्त्रों में यहाँ तक कहा गया है कि इस मनुष्य जीवन को पाने के लिए देवता भी लालायित रहते हैं तो उनके लालच का कारण हमारा शरीर नहीं, वरन हमारी चेतना है।

देवताओं के शरीर आधिदैविक तत्त्वों के बने होते हैं, वे हमारी तुलना में ज्यादा समृद्ध, सुंदर और प्रकाशित हैं, पर मानवीय चेतना के गर्भ में न जाने ऐसी कितनी सिद्धियों एवं विभूतियों के भंडार सुरक्षित हैं कि एक अकेला मनुष्य हजारों देवताओं पर भारी पड़ सकता है। ऐसा मनुष्य फिर परमपूज्य गुरुदेव के रूप में हजारों पुस्तकें रचता, हजारों केंद्र खड़ा करता, अतिमानवीय पुरश्चरण करता और मुख से निकले शब्दों को साकार करता दिखाई पड़ता है। देखने में लगता है कि ये सिद्धियाँ कहीं बाहर से अवतरित हुई हैं, परंतु सत्य इससे विपरीत है। ये सिद्धियाँ, ये विभूतियाँ हैं तो इनसान के भीतर ही, परंतु ये साधनात्मक परिष्कार के पथ का अनुगमन करने पर ही इनसान को मिल पाती हैं।

ध्यान से देखें तो साधना और किसी तत्त्व का नाम नहीं, वरन हमारे स्वयं के भीतर उपस्थित परंतु प्रसुप्त शक्तियों के जागरण के लिए किए गए पुरुषार्थ का नाम है। हम अपने व्यक्तित्व को तपाते हैं, अपनी पात्रता को बढ़ाते हैं तो प्रकृति एवं परमात्मा मिलकर हमारे ऊपर अनुदानों की वर्षा करते हैं। इन्हें ऐसे समझना चाहिए कि जैसे एक ताला है तो दूसरा चाबी है। दोनों के मिलते ही हमारी सिद्धियों के द्वार खुद-ब-खुद खुल जाते हैं। जब हमारा अंतर्मन साधना की ऊर्जा से उर्वर होता है, उसमें पात्रता की पौध लगती है तो उसमें सिद्धियों के फल स्वयमेव आने लगते हैं। उस स्थिति में दैवी शक्तियाँ भी हमारा सहयोग करती हैं, परंतु उस हेतु प्रयत्न व पुरुषार्थ तो हमें ही करना पड़ता है।

इन बातों को यहाँ लिखने की आवश्यकता इसलिए है कि वर्तमान समय में ऐसा प्रतीत होता है कि लोग साधना के इस राजमार्ग को भुलाकर बैठे हैं। सत्य यह है कि साधना से सिद्धि को प्राप्त करने का यह एकमात्र तरीका है। इस पथ पर कोई शॉर्टकट उपलब्ध नहीं है। यदि कोई यह सोचे कि हम चावल फेंक करके, 5 रुपये चढ़ा करके, नारियल फोड़ करके, घंटा बजा करके, तिलक लगा करके, बाह्य स्वांग का पालन करके सर्वशक्तिमान ईश्वर को, अंतर्यामी परमात्मा को मूर्ख बना देंगे और वे भी बदले में हमें एक अलादीन का चिराग दे देंगे तो यह कपोल-कल्पना के सिवाय और क्या है?

साधना का, अध्यात्म का यह पथ सदा से तपस्वियों का पथ रहा है, सदा से यह पथ पराक्रमियों को, शूरवीरों को शोभा देता रहा है। ऐसी छोटी बातें, जहाँ व्यक्ति को यह लगने लगे कि दीपक का बुझ जाना किसी अनिष्ट की भाँति है और उसका जल उठना चमत्कार का प्रतीक है—यह एक नासमझी के सिवाय और कुछ भी नहीं है। बच्चों के मनोरंजन के लिए ऐसी बातें देखी-सुनी जा सकती हैं, परंतु वैसा कहने से यह शाश्वत सत्य झुठलाया नहीं जा सकता है कि असली जीवन में अध्यात्म का पथ एक संग्राम की तरह से है।

वास्तविक अध्यात्म और यथार्थ साधना एक जीवन समर की भाँति हैं। यहाँ देवत्व को प्राप्त करने के लिए आसुरी शक्तियों से दो-दो हाथ करने ही पड़ते हैं। जिन आसुरी शक्तियों के लिए यहाँ इशारा किया जा रहा है—वे और कोई नहीं, बल्कि हमारे ही चित्त पर, हमारे ही अवचेतन पर कालिख के रूप में बैठे हमारे कुसंस्कार हैं।

इन कुसंस्कारों को साफ किए बिना हमारे जीवन में प्रकाश नहीं आता है और जब तक जीवन में प्रकाश नहीं आता है, तब तक हमें शांति एवं संतुलन का एहसास भी नहीं हो पाता है।

महर्षि पतंजलि कहते हैं कि हमारा चित्त तब तक निर्मल नहीं हो पाता है, जब तक कि हमने स्वयं को कर्मों के जंजाल से मुक्त न कर लिया हो। बाहर आप प्रयत्न करते रहिए, परंतु जीवन आपका वही-का-वही रहेगा। इसीलिए यदि हम गंभीरता से आकलन करें तो अनुभव कर सकेंगे कि समस्त भारतीय अध्यात्मशास्त्रों में आध्यात्मिक पुरुषार्थ का संदर्भ कर्मों की शुद्धि से है, संस्कारमुक्त, चित्त शुद्ध होने से है।

यदि हम पतंजलिकृत योगसूत्र को पढ़ें तो उसमें महर्षि पतंजलि कहते हैं—

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥ 1/2 ॥

अर्थात चित्त की वृत्तियों का निरोध योग है।

यदि हम नीतिशास्त्र को पढ़ें तो उसमें चाणक्य कहते हैं कि—

फलम् पापस्यनेच्छन्ति पापम् कुर्वन्ति यत्नतः।
फलम् पुण्यस्यनेच्छन्ति पुण्यम नेच्छन्ति मानवाः ॥

अर्थात मनुष्य पाप का फल नहीं चाहता, परंतु पापों को करता धड़ल्ले से है और चाहता फल पुण्य का है, परंतु पुण्य करने में विश्वास नहीं रखता।

इसी तरह यदि हम ज्योतिषशास्त्र को पढ़ें तो उसमें कहते हैं कि—

केवलं ग्रहनक्षत्रं न करोति शुभाशुभम्।
सर्वमात्मकृतं कर्म लोकवादो ग्रहा इति ॥

अर्थात ग्रह-नक्षत्र किसी का शुभ-अशुभ नहीं करते। अपने किए गए कर्मों को ही लोग ग्रहों का नाम दे देते हैं।

स्पष्ट है कि भारतीय अध्यात्मशास्त्र में साधना का संदर्भ कर्मशुद्धि से है। किसी तरह के शॉर्टकट से नहीं। हमारे पूर्वकृत कर्म ही हमारे मन पर कालिमा बनकर छाए रहते हैं। ये ही शरीर में रोग, मन में तनाव, भावनाओं में विक्षोभ, रिश्तों में दरारों, समाज में संकट के रूप में अभिव्यक्त होते दिखाई पड़ते हैं।

इसी चित्त शुद्धि का नाम, कुसंस्कारों से मिलने वाली इसी मुक्ति का नाम साधना है। यह ही अर्जुन का महाभारत है, यह ही देवासुर संग्राम है और यही वास्तविक अध्यात्म है। आज की परिस्थितियों में इसी वास्तविक अध्यात्म के पथ पर चलने की अभीप्सा सबके मन में जाग्रत होनी चाहिए। ❑

योग-साधनाएँ और सिद्धियाँ अर्जित न की जाएँ सो बात नहीं, पर सामान्यतः सिद्धियों का मानवीय पूर्णता में विक्षेप माना जाता है; क्योंकि उनसे अहंकार पैदा होता है, जबकि धर्म विशुद्ध निरहंकारिता को कहते हैं। एक संत के त्याग, तप और विद्या की राजा ने बड़ी प्रशंसा सुनी तो उसे राजमहल में आमंत्रित किया। जब उसने आना स्वीकार कर लिया तो राजा ने स्वागत-सत्कार की भारी तैयारी की। रास्ते में मूल्यवान कालीन बिछवा दिए। संत आए तो उनके पैर कीचड़ में सने थे और उन्हीं से वे कालीन को गंदा करते हुए चले आए। मंत्री ने इसका कारण पूछा तो उत्तर मिला— ''गर्व मुझे बुरा लगता है। राजा के इस प्रदर्शन को मलिन करने के लिए मैंने कीचड़ में पैर साने हैं और इन कालीनों का गर्व चूर कर रहा हूँ।'' राजा ने विनम्र होकर पूछा— ''भगवन्! गर्व-से-गर्व कैसे चूर होगा?'' संत हतप्रभ रह गए और उनने अपनी त्रुटि सुधारने के लिए वापस लौट चलना ही उचित समझा।

भारतीय संस्कृति, विश्व संस्कृति व हमसे आशा-अपेक्षाएँ
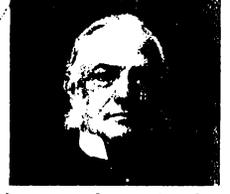
आज हम विकास के चरम पर वैश्विक संकट के एक नए दौर से गुजर रहे हैं। तकनीकी विकास के साथ जहाँ पूरा विश्व एक गाँव में तब्दील हो चुका है तो वहीं लोगों के दिलों के बीच की दूरियाँ बढ़ रही हैं और कहीं-कहीं तो यह संघर्ष भयंकर घृणा, विद्वेष, हिंसा यहाँ तक कि युद्ध का रूप ले रहा है। ऐसे में आपसी सद्भाव, विश्वास एवं मानवीय मूल्यों की आवश्यकता पहले से कहीं अधिक आन पड़ी है।

यहाँ भारतीय संस्कृति की महत्ता पहले से अधिक प्रासंगिक हो जाती है, जो अपने सार्वभौम स्वरूप एवं शाश्वत मूल्यों के आधार पर विश्व संस्कृति की भूमिका में अपना योगदान दे सकती है। व्यक्तित्व को परिमार्जित एवं परिष्कृत करने वाली विधा के रूप में संस्कृति की यथार्थ परिभाषा को वस्तुतः यही चरितार्थ करती है। भारतीय संस्कृति के ऐसे ही स्वरूप की मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हुए विश्वविख्यात कला समीक्षक हेवल कहते हैं कि किसी भी दूसरे राष्ट्र ने, प्राचीन हो या आधुनिक, इतनी उच्च संस्कृति का निर्माण नहीं किया। किसी भी धर्म को जीवन दर्शन बनाने में इतनी सफलता नहीं मिली। यहाँ तक कि कोई मानवीय ज्ञान इतना समृद्ध और शक्तिशाली नहीं हो सका, जितना भारत में हुआ।

इसी तर्ज पर भारतीय संस्कृति की ज्ञान-विज्ञान परंपरा से मुग्ध जर्मन विद्वान मैक्स मूलर लिखते हैं, यदि मुझसे पूछा जाए कि किस देश में मानव मस्तिष्क ने अपनी सूक्ष्मतम शक्तियों को विकसित किया, जीवन के बड़े-से-बड़े प्रश्नों पर विचार किया, तो मैं भारतवर्ष की ओर संकेत करूँगा। जीवन के इन्हीं समाधान सूत्रों व सांस्कृतिक विशेषताओं के आधार पर भारत से आज के विश्व को बहुत आशाएँ हैं व इससे युगमानस का दिशाबोध करने व इसके सांस्कृतिक नेतृत्व की अपेक्षा की जाती है।

दीर्घकालीन स्थायित्व—हजारों वर्षों के दीर्घकालीन संघर्ष एवं विकासयात्रा के बाद भी भारतीय संस्कृति का प्रवाह बना हुआ है। मिस्र, बेबीलोन, यूनान, रोमन, सुमेर जैसी प्राचीन सभ्यताओं के आज अवशेष मात्र मिलते हैं, जो अपने चरम वैभव को प्राप्त होकर विलीन होती गईं। इतिहास के विशेषज्ञों के अतिरिक्त और किसी को इनका ज्ञान नहीं। इकबाल ने ठीक ही फरमाया था कि—

यूनान, मिस्त्र और रोम, सब मिट गए जहाँ से।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी॥

इस कालजयी हस्ती का कारण रहा है इसका धर्म एवं अध्यात्म तत्त्व, जो इसके कालजयी ग्रंथों; यथा वेद-उपनिषद्, स्मृति ग्रंथ, रामायण, महाभारत, षड्दर्शन आदि तथा इस पुण्यभूमि में समय-समय पर जन्म लेने वाली दिव्य आत्माओं एवं महापुरुषों की अंतहीन शृंखला के माध्यम से आज तक प्रवाहमान है, पीढ़ियों को आलोकित करता रहा है। इसी आधार पर इसका मूलस्वरूप यथावत् बना रहा; जबकि इसको नष्ट-भ्रष्ट करने व मिटाने के लिए कितने आक्रांताओं ने इस पर सांघातिक प्रहार किए, लेकिन इसके अध्यात्म तत्त्व के समक्ष सभी प्रयास बौने पड़े।

महर्षि अरविंद के शब्दों में, आध्यात्मिकता भारतीय संस्कृति को समझने की कुंजी है, जो इसे अन्य संस्कृतियों से अलग करती है। आत्मा-परमात्मा पर जितना चिंतन यहाँ पर हुआ है, उतना शायद ही अन्यत्र कहीं हुआ हो। आगे श्रीअरविंद लिखते हैं कि भारतीय सभ्यता में धर्म द्वारा क्रियाशील हुआ दर्शन और दर्शन द्वारा आलोकित धर्म ही नेतृत्व करते आए हैं। शेष सभी चीजें कला, काव्य आदि यथासंभव उसका अनुसरण करते रहे हैं। निस्संदेह भारतीय संस्कृति की पहली विशेषता यही है।

इसके पीछे तथ्य यह है कि भारतीय संस्कृति आरंभ से ही एक आध्यात्मिक एवं अंतर्मुखी, धार्मिक व दार्शनिक संस्कृति रही है और बराबर ऐसी ही चली आई है। यहाँ धनवानों व सत्ताधीशों को उतनी प्रतिष्ठा नहीं मिली, जितनी कि आध्यात्मिक महापुरुषों को।

व्यापकता व समग्रता भारतीय संस्कृति की अन्य विशेषता है। जीवन के समग्र परिष्कार का, समाज के बहुमुखी विकास का, चेतना के आत्यंतिक उत्कर्ष का जो चिंतन यहाँ मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। आश्चर्य नहीं

कि इसी कारण जो भी विचारशील एवं सत्यान्वेषी विदेशी इसके शाश्वत चिंतन की धारा में थोड़ा-सा भी अवगाहन कर गए, वे सदा के लिए भारतीय संस्कृति के ही होकर रह गए।

हर युग में एवं हर देश में भारतीय संस्कृति के ऐसे दीवानों की लंबी फेहरिस्त मिल जाएगी, जो आकाश से व्यापक एवं सागर से गहन दर्शन से प्रभावित रहे। जीवन का कोई क्षेत्र ऐसा नहीं, जो इससे अछूता रहा हो। यहाँ पर जीवन के लौकिक एवं आध्यात्मिक उन्नयन के लिए धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष का अद्‌भुत चिंतन उपलब्ध होता है।

जीवन व समाज को क्रमिक सोपानों के साथ पार करते हुए इसे चरमोत्कर्ष तक ले जाने वाली वर्ण-आश्रम व्यवस्था इसकी अपनी अनूठी विशेषता रही है। काल के साथ इसमें थोड़ी विकृतियाँ अवश्य आ गई हों, यह बात दूसरी है, लेकिन इसमें निहित संदेश स्वयं में समग्र एवं विचारणीय है। मिली-जुली, मिश्रित संस्कृति—इसके विकास में निस्संदेह रूप से विभिन्न संस्कृतियों का योगदान रहा है। आर्य, अनार्य, शक, हूण, यूनानी, कुषाण, पारसी आदि यहाँ आते गए और इसी में समाते गए। आज भेद करना कठिन है कि सब इसमें कहाँ समा गए।

भारतीय संस्कृति की यह समन्वयशक्ति स्वयं में अद्‌भुत एवं विरल है। इसकी उपमा उस महासागर से की जा सकती है, जिसमें अनेक संस्कृतियाँ विभिन्न दिशाओं में आकर समाती गईं। उनके दर्शन, विचार, कला, ज्ञान-विज्ञान आदि सबको यह ग्रहण करते हुए, आत्मसात् करते हुए अपना बनाती गई। इसी आधार पर विविधता में एकता भारतीय संस्कृति की एक अहम विशेषता है।

इसी से जुड़ा इसका पहलू रहा है इसकी उदारता—सहिष्णुता। वेद वाक्य—**एकं सद्‌विप्रा बहुधा वदन्ति** में इसका यह चिंतन बीज रूप में मिलता है। ईश्वर एक ही है, इसके बाहरी भेदों के आधार पर इसके भिन्न-भिन्न नाम हो सकते हैं। इसी कारण 33 कोटि देवी-देवताओं को इसमें स्थान मिलता है। देश के ही नहीं, विदेश से आए धर्मों के देवी-देवता व भगवान भी यहाँ सहज स्वीकार्यता पाते हैं; क्योंकि भारतीय संस्कृति तात्त्विक रूप में उनमें कोई भेददृष्टि नहीं रखती। '**ईश्वर अल्लाह तेरो नाम, सबको सन्मति दे भगवान**' का भजन इसी तर्ज पर उभरता है।

इसी आधार पर यहाँ मूलतः धार्मिक विद्वेष का सर्वथा अभाव रहा है। किसी भी सम्राट ने दूसरे धर्म की भावनाओं को ठेस नहीं पहुँचाई। अशोक बौद्ध होते हुए भी अन्य धर्मों का आदर करते थे तथा ब्राह्मण को दान करते थे। उनका कथन मनन योग्य है, जब वे कहते हैं कि हम दान या पूजा की इतनी परवाह नहीं करते, जितनी इस बात की कि सब संप्रदायों में मेल की वृद्धि हो। संप्रदायों में मेल की वृद्धि कई उपायों से होती है, पर उसकी जड़ वाणी का संयम है अर्थात लोग अपने संप्रदाय का आदर बिना किसी दूसरे संप्रदाय की निंदा के करें।

इसी आधार पर सत्य, न्याय, अहिंसा, शांति और प्रेम जैसे मूल्य यहाँ सहज रूप में पलते गए, विकसित होते गए। इसी आधार पर उपनिषदों का महावाक्य '**सत्यमेव जयते**' आज राष्ट्र का प्रेरक वाक्य बना हुआ है। कर्मफल सिद्धांत भारतीय संस्कृति की अन्य विशेषता है, जो भगवद्‌गीता में अपने मुखरतम रूप में व्यक्त होती है। भगवान श्रीकृष्ण के मुख से इसका संदेश पाकर विषादग्रस्त अर्जुन अपने योद्धा के स्वधर्म में जाग्रत होते हैं। यह संदेश जीवन में मोक्ष की प्राप्ति को केवल धर्म से नहीं, अपितु कर्म से भी जोड़ता है। इसके अनुसार, मोक्ष का साधन है धर्मयुक्त कर्म। कुकर्म जहाँ अधोगति व पतन की ओर ले जाता है तो वहीं सत्कर्म से उत्थान व मोक्ष का मार्ग प्रशस्त होता है, जीवन का सर्वांगीण विकास सुनिश्चित होता है और व्यक्ति का लोक-परलोक सुधरता है।

विश्व ने भारतीय संस्कृति की जिस सर्वोच्चता व श्रेष्ठता को सहज रूप में स्वीकार किया है, उसका मुख्य कारण इसमें निहित शाश्वत एवं चिरस्थायी मूल्य रहे हैं। ये ही '**आत्मवत् सर्वभूतेषु**' और '**वसुधैव कुटुम्बकम्**' जैसे उदात्त जीवनदर्शन को संभव बनाते हैं। इन्हीं के आधार पर व्यक्ति और समाज जीवन के परिवर्तनों को स्वीकार करने तथा इनसे सामंजस्य बिठाने की अदम्य क्षमता पाते रहे हैं।

इसी आधार पर भारतीय संस्कृति विश्व संस्कृति के रूप में अपनी भूमिका निभाने में सक्षम है। देव संस्कृति की संतान होने के नाते हम सबका पावन कर्त्तव्य बनता है कि इसके आदर्शों को जीवन में धारण करने का भरसक प्रयास करते हुए, इस महान कार्य में अपना भावभरा योगदान दें। ❑

अखंड भारत से ही साकार होगा विश्वशांति का स्वप्न

भूगोल के साथ ही भारत के इतिहास का परिदृश्य भी निराला है। अफ्रीका, अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया जैसे महाद्वीपों की कौन कहे, आधुनिक सभ्यता का केंद्र कहे जाने वाले यूरोप महाद्वीप का भी इतिहास इतना प्राचीन और विविध नहीं है, जितना कि अपने देश भारत का है। चीन, हालाँकि भारत से बड़ा देश है और उसकी भी प्राचीन सभ्यता है, पर चीन के इतिहास में भी इतने रंग और इतने आरोह-अवरोह नहीं हैं, जितने कि भारत के इतिहास में हैं।

हड़प्पा की कहानी, भारत की प्राचीन सभ्यता के रूप में कही जाती है। इसके महाराष्ट्र, राजस्थान, हरियाणा और उत्तर प्रदेश तक विस्तृत होने के प्रमाण मिले हैं। यद्यपि मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा में प्राप्त लिपियाँ अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी हैं, फिर भी इस सारे पश्चिमोत्तर भारत में फैली सभ्यता में समानताएँ और भिन्नताएँ देखी जा सकती हैं।

राष्ट्र एक शाश्वत अवधारणा है। परतंत्रता से पूर्व पूरी पृथ्वी पर भारत सबसे ज्यादा समृद्ध देश था। जब भारत गुलाम हुआ, तब धीरे-धीरे देश के टुकड़े होते गए। वर्तमान में भारत का जो चित्र हमें दिखाई देता है, वह खंडित भारत का है। हम मुगल और अँगरेजों के शासनकाल के पूर्व के भारत के इतिहास का अध्ययन करेंगे तो भारत एक ऐसा राष्ट्र दिखाई देगा, जो विश्व का मार्गदर्शन करता रहा था। आज हमें उस कालखंड का इतिहास दिखाई नहीं देता। आज हमारा भारत फिर से अगर अखंड बन जाएगा तो समस्त विश्व के अंदर शांति की स्थापना की जा सकती है।

पाकिस्तान व बांग्लादेश के निर्माण का इतिहास सर्वविदित है, पर हमें यह भी जानना चाहिए कि सन् 1947 में विशाल भारतवर्ष का पिछले 2500 वर्षों में वह 24वाँ विभाजन था। प्राचीन समय में जंबूद्वीप, जिसे आज एशिया द्वीप कहते हैं तथा इंदु सरोवर, जिसे आज हिंद महासागर कहते हैं, के हम निवासी हैं। इस जंबूद्वीप (एशिया) के लगभग मध्य में हिमालय पर्वत स्थित है।

हिमालय पर्वत में विश्व की सर्वाधिक ऊँची चोटी सागरमाथा, गौरीशंकर है, जिसे सन् 1835 में अँगरेज शासकों ने एवरेस्ट नाम देकर इसकी प्राचीनता व पहचान को बदलकर रख दिया था। हम पृथ्वी पर जिस भू-भाग अर्थात राष्ट्र के निवासी हैं, उस भू-भाग का वर्णन अग्नि, वायु एवं विष्णु पुराण में लगभग समानार्थी श्लोक के रूप में है।

उत्तरं यत् समुद्रस्य, हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्षं तद् भारतं नाम, भारती यत्र संतति॥

अर्थात हिंद महासागर के उत्तर में तथा हिमालय पर्वत के दक्षिण में जो भू-भाग है, उसे भारत कहते हैं और वहाँ के समाज को भारतीय के नाम से पहचानते हैं।

बृहस्पति आगम में इसके लिए निम्न श्लोक उपलब्ध है—

हिमालयं समारभ्य यावद् इन्दु सरोवरम्।
तं देव निर्मित देशं, हिन्दुस्थानं प्रचक्षते॥

अर्थात हिमालय से लेकर हिंद महासागर तक देवपुरुषों द्वारा निर्मित इस भू-भाग को हिंदुस्तान कहते हैं। अपने समाज में एक परंपरा के अनुसार संकल्प लेते समय यह शब्द प्रयोग करते हैं—जम्बूद्वीपे भरतखण्डे (भारतवर्ष), जो भारतीय भू-भाग से संबद्ध है। यह प्राचीन भारत की चर्चा है, परंतु वर्तमान से 3000 वर्ष पूर्व तक के भारत की चर्चा में आता है कि पिछले 2500 वर्ष में जो भी आक्रांता यूनानी (रोमन ग्रीक), यवन, हूण, शक, कुषाण, सिरियन, पुर्तगाली, फेंच, डच, अरब, तुर्क, तातार, मुगल व अँगरेज आदि आए। इन सबका विश्व के सभी इतिहासकारों ने वर्णन किया, परंतु सभी पुस्तकों में यह प्राप्त होता है कि आक्रांताओं ने भारतवर्ष पर, हिंदुस्तान पर आक्रमण किया है। संभवतः ही कोई पुस्तक (ग्रंथ) होगी, जिसमें यह वर्णन मिलता हो कि इन आक्रमणकारियों ने अफगानिस्तान, म्यांमार, श्रीलंका (सिंहलद्वीप), नेपाल, तिब्बत (त्रिविष्टप), भूटान, पाकिस्तान, मालद्वीप या बांग्लादेश पर आक्रमण किया।

यहाँ एक प्रश्न खड़ा होता है कि ये भू-प्रदेश कब, कैसे गुलाम हुए और स्वतंत्र हुए। पाकिस्तान व बांग्लादेश के निर्माण का इतिहास सभी जानते हैं। शेष इतिहास चर्चित नहीं है। सन् 1947 में विशाल भारतवर्ष का पिछले 2500 वर्षों में 24 वाँ विभाजन है। अँगरेजों का 350 वर्ष पूर्व के लगभग ईस्ट इंडिया कंपनी के रूप में व्यापारी बनकर भारत आना, फिर धीरे-धीरे शासक बनना और उसके पश्चात सन् 1857 से 1947 तक उनके द्वारा किया गया भारत का विभाजन दु:खद है।

अफगानिस्तान को 26 मई, 1876 को रूसी व ब्रिटिश शासकों (भारत) के बीच गंडामक संधि कर अफगानिस्तान नाम से एक बफर स्टेट अर्थात राजनीतिक देश को दोनों ताकतों के बीच स्थापित किया गया। वहीं पृथ्वी नारायण शाह ने मध्य हिमालय के 46 से अधिक छोटे-बड़े राज्यों को संगठित कर नेपाल नाम से एक राज्य का संगठन किया। उसको अँगरेजों ने विचारपूर्वक सन् 1904 में वर्तमान के बिहार स्थित सुगौली नामक स्थान पर उस समय के पहाड़ी राजाओं से संधि कर भारत का दूसरा विभाजन करा दिया।

वहीं सन् 1906 में सिक्किम व भूटान जो कि वैदिक-बौद्ध मान्यताओं के मिले-जुले समाज के छोटे भू-भाग थे—इन्हें अलग कर अपने प्रत्यक्ष नियंत्रण के लिए रेजीडेंट को रखकर भारत को विभाजित कर दिया। सन् 1914 में तिब्बत को केवल एक पार्टी मानते हुए चीनी साम्राज्यवादी सरकार व भारत के काफी बड़े भू-भाग पर कब्जा जमाए अँगरेज शासकों के बीच एक समझौता हुआ।

भारत और चीन के बीच तिब्बत को एक बफर स्टेट के रूप में मान्यता देते हुए हिमालय को विभाजित करने के लिए मैकमोहन रेखा निर्माण करने का निर्णय हुआ। सन् 1937 में म्यांमार व सन् 1939 में श्रीलंका को अलग राजनीतिक देश की मान्यता दी। म्यांमार व श्रीलंका का अलग अस्तित्व प्रदान करते ही मतांतरण का पूरा ताना-बाना जो पहले तैयार था, उसे अधिक विस्तार व सुदृढ़ता भी इन देशों में प्रदान की गई। म्यांमार के अनेक स्थान विशेष रूप से रंगून का अँगरेजों द्वारा देशभक्त भारतीयों को कालेपानी की सजा देने के लिए जेल के रूप में भी उपयोग होता रहा है।

आज भले ही हम राजनीतिक रूप से खंड-खंड हो गए हैं, पर सांस्कृतिक रूप से एक अखंड राष्ट्र ही है। राज्य राजनीतिक इकाई हैं, जबकि राष्ट्र सांस्कृतिक इकाई है। भारत भले ही विभाजित हुआ हो, पर सांस्कृतिक रूप में हम उसे सदैव जीते हैं और आज जब हम अपने मन में अखंड भारत की कल्पना करते हैं तो पहले हम सांस्कृतिक रूप से एक होंगे और बाद में राजनीतिक रूप से। दिन के बाद रात होना जैसे स्वाभाविक है, वैसे ही भारत का पुन: अखंड होना भी उसकी नियति है।

विश्व में अनेक उदाहरण हैं, जिनके आधार पर हम भारत को पुन: अखंड बनाने के विषय में सोच सकते हैं; चाहे वो बर्लिन की दीवार को तोड़कर पुन: पूर्वी व पश्चिमी जर्मनी के एक होने का विषय हो या इजराइल के रूप में यहूदियों को सैकड़ों वर्ष बाद अपने देश का मिलना। इस प्रकार अखंड भारत से ही साकार होगा विश्वशांति का स्वप्न। ❑

सूफी फकीर बाल शाम अपने शिष्यों के साथ नगर भ्रमण को निकले हुए थे। मार्ग में एक व्यक्ति मिला और उसने अपना प्रश्न उनके सम्मुख रखा। प्रश्न था—"हमें गुरु की आवश्यकता क्यों होती है ?" बाल शाम बोले—"तुमने चिड़िया के अंडे देखे हैं ? चिड़िया अंडे तभी फोड़ती है, जब अंदर चूजा बड़ा हो गया होता है और किसी को यह पता नहीं होता। वैसे ही सच्चे गुरु को अपने शिष्य के संस्कारों, प्रारब्धों का पूरा ज्ञान होता है और वही सही समय आने पर अपने शिष्य को सही साधनापद्धति दे सकता है।" उस व्यक्ति की शंका का समाधान हो गया।

पर्व विशेष (गुरु पूर्णिमा)

गुरु सम उपकारी कोई नहीं

इस जगत् में गुरु के समान कोई कृपालु नहीं, दयालु नहीं, उपकारी नहीं। उनकी कृपा के बिना सद्ज्ञान, ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति संभव नहीं। उनकी कृपा के बिना भगवद्दर्शन संभव नहीं। यदि उनकी कृपा हो जाए तो शिष्य के लिए असंभव भी संभव हो जाता है। उनकी कृपा से शिष्य को ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। उनकी कृपा हो तो शिष्य निर्गुण, निराकार ब्रह्म को भी सगुण-साकार रूप में प्राप्त कर लेता है। वह गुरुकृपा से भगवत्प्राप्ति, भगवद्दर्शन कर पाता है।

उन गुरु की कृपा का बखान कैसे किया जाए, जो शिष्य पर कृपा ही नहीं करते, बल्कि शिष्य को भी अपने समान ही बना लेते हैं। जैसे सागर से मिलकर नदियाँ भी सागर हो जाती हैं, वैसे ही ब्रह्मस्वरूप गुरु को पाकर, उनके मार्गदर्शन में साधना कर, तपकर शिष्य भी समुद्ररूप हो जाता है, ब्रह्मरूप हो जाता है। सरिता और सागर, दोनों एकरूप हो जाते हैं। वैसे ही शिष्य और गुरु, दोनों एकरूप हो जाते हैं। गुरु के अलावा शिष्य पर ऐसी कृपा भला दूसरा कौन कर सकता है ? तभी तो संत कबीर ने कहा है—

गुरु गोबिंद दोऊ खड़े, काके लागूँ पाँय।
बलिहारी गुरु आपने, गोबिंद दियो बताय॥
गुरु पारस को अंतरो, जानत हैं सब संत।
वह लोहा कंचन करे, ये करि लेय महंत॥

अर्थात गुरु और गोविंद एक साथ खड़े हों तो किसे प्रणाम करना चाहिए—गुरु को अथवा गोविंद को ? ऐसी स्थिति में गुरु के श्रीचरणों में शीश झुकाना उत्तम है; क्योंकि गुरु के कृपाप्रसाद से ही शिष्य को गोविंद के दर्शन को करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उस गुरु की महानता का पार पाना संभव नहीं, जो शिष्य को भी स्वयं अपने समान ही महान बना देता है। गुरु और पारस के अंतर को सभी ज्ञानी पुरुष जानते हैं। पारसमणि के विषय में सारा जगत् जानता है कि पारस के स्पर्श से लोहा सोना बन जाता है, पर गुरु ऐसे पारस हैं जो शिष्य को सोना नहीं, बल्कि स्वयं के समान ही पारस बना देते हैं अर्थात महान बना देते हैं। उसे ब्रह्मज्ञान का अमृत पिलाकर उसके भगवद्दर्शन का मार्ग प्रशस्त कर उसे अपने समान ही बना लेते हैं।

सचमुच बड़े सौभाग्यशाली हैं वे लोग, जिन्हें जीवन में ऐसे सद्गुरु की शरण में आने का सौभाग्य प्राप्त होता है। भारतवर्ष का आध्यात्मिक इतिहास ऐसे सद्गुरु व ऐसे सौभाग्यशाली शिष्यों से भरा पड़ा है। संत एकनाथ भी उन्हीं सौभाग्यशाली शिष्यों में एक रहे हैं, जिन्हें जनार्दन स्वामी के रूप में भगवद्स्वरूप ब्रह्मज्ञानी गुरु की शरण में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था और गुरुकृपा से भगवद्दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, पर यदि एकनाथ जैसे सच्चे शिष्य व गुरुभक्त हों तो उन्हें जनार्दन स्वामी जैसे सद्गुरु की प्राप्ति हो भी क्यों न ?

एकनाथ बचपन से ही भगवान के प्रति अगाध श्रद्धा और अगाध अनुराग रखते थे या यों कहिए कि भगवद्भक्ति के पुण्य संस्कार उन्हें जन्म से ही प्राप्त थे। स्नान, संध्या, भगवद्भजन, पूजन, ध्यान व शास्त्र-श्रवण में उनकी बड़ी प्रीति थी। अपनी आध्यात्मिक दिनचर्या के कारण उनकी भगवद्भक्ति प्रगाढ़ होती गई, जिससे प्रभावित होकर सर्वज्ञ, सर्वव्यापी प्रभु ने उन्हें जनार्दन स्वामी जैसे सद्गुरु की शरण पाने का सौभाग्य प्रदान किया। एकनाथ के लिए भी उनके गुरु ही सब कुछ थे। वे कहा करते थे—"गुरु ही माता, गुरु ही पिता और गुरु ही हमारे कुलदेव हैं। महान संकट पड़ने पर आगे और पीछे वे ही हमारी रक्षा करने वाले हैं। यह काय, वाक् और मन उन्हीं के चरणों में अर्पित है।" एकमात्र जनार्दन की शरण में है। गुरु एक जनार्दन ही हैं।

जनार्दन स्वामी को श्रीदत्त भगवान के दर्शन हुए थे और उन्हें उनके नित्य दर्शन हुआ करते थे। एकनाथ की भगवद्भक्ति व गुरुभक्ति को देखकर जनार्दन स्वामी बड़े प्रसन्न हुए थे और उन्हें बड़े प्रेम से अपने पास ही रख लिया था। एकनाथ ने लगातार छह वर्ष बड़े ही भक्तिभाव से जनार्दन स्वामी की सेवा की और उनके अनुग्रह के पूर्ण पात्र हुए।

एकनाथ भगवान से मन-ही-मन यह प्रार्थना किया करते कि हे प्रभु! गुरुसेवा करने की मुझे इतनी सामर्थ्य दें कि सभी नौकर-चाकरों का काम मैं अकेला ही कर सकूँ। गुरु का संतोष ही उनका संतोष था। गुरु के शब्द ही उनके लिए शास्त्र थे। गुरु की मूर्ति उनके परमेश्वर और गुरु का घर ही उनका स्वर्ग था। इसी परम शुद्ध भावना से वे गुरु की अखंड सेवा करते थे। गुरुसेवा को ही उन्होंने परम धर्म माना और जाग्रत, सुषुप्ति और स्वप्न इन तीनों अवस्थाओं में भी गुरु के सिवा और किसी वस्तु का चिंतन नहीं किया। इस प्रकार गुरु की सेवा करते-करते एकनाथ के सब मनोविकार मिट गए, राग-द्वेष, लोभ-मोह आदि रिपु शरीर छोड़कर चले गए। उनकी इंद्रियाँ वासनारहित हो गईं और काया तेजोमय हो गई व इसके साथ ही उनका देहाभिमान भी शून्य हो गया।

इस प्रकार गुरुसेवा से उनकी चित्तशुद्धि हुई और वह गुरुप्रसाद को प्राप्त हुए। ऐसी शिष्यवृत्ति के साथ रहते हुए उन्होंने साक्षात् गुरुमुख से ज्ञानेश्वरी, अमृतानुभव और श्रीमद्भागवत आदि ग्रंथ सुने और उससे उनका आत्मबोध जाग्रत हो गया। गुरु सेवा, गुरु प्रेम में वे ऐसे डूब गए कि स्त्री, पुत्र, धन ही नहीं, बल्कि अपना मन भी भूल गए, उन्हें यह भी ध्यान न रहा कि मैं कौन हूँ ? उनकी यह दृढ़ भावना थी कि सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सर्वसाक्षी परमात्मा ही जनार्दन स्वामी के रूप में प्रकट हुए हैं और इसी दृढ़ भावना को धारण किए हुए वे सदा अपने गुरु जनार्दन स्वामी का ध्यान किया करते एवं उन्हीं की मानस पूजा किया करते।

अंततः एकनाथ गुरुकृपा से आत्मदृष्टि पाकर श्रीदत्त भगवान के दिव्य दर्शन भी अपने नेत्रों से कर सके। सचमुच सच्ची गुरुभक्ति हो, तो शिष्य को गुरुकृपा अवश्य ही प्राप्त होती है और गुरुकृपा से भगवद्दर्शन कर पाना भी संभव हो जाता है। सचमुच गुरु सम उपकारी कोई नहीं। गुरु सम कृपालु कोई नहीं। ❑

युवक कुलभूषण पाठक ने एम0ए0 पास किया तो उसके पास अच्छी नौकरियों के प्रस्ताव आने लगे। उन दिनों बहुत ज्यादा व्यक्ति इतनी उच्च शिक्षा ग्रहण नहीं करते थे। उसके ही शहर के पं0 नीलांबर शास्त्री उसके लिए अपनी पुत्री का विवाह प्रस्ताव लेकर आए। कुलभूषण के पिता ने उनसे अत्यधिक दहेज की माँग की, परंतु कुलभूषण नैष्ठिक व्यक्तित्व के मालिक थे, उन्होंने अपने पिता से इस कुप्रथा का विरोध किया। उनके पिता क्रुद्ध होकर बोले—''हमने तुम्हारी शिक्षा पर बहुत खरच किया है, क्या तुम्हारे ऊपर हमारा कोई अधिकार नहीं।'' यह सुनकर कुलभूषण चुप हो गए, पर उनके अंतर्मन ने पिता का यह व्यवहार स्वीकार नहीं किया।

शास्त्री जी ने जैसे-तैसे दहेज की व्यवस्था कर पुत्री का विवाह कुलभूषण से कर दिया। विवाह के पश्चात जब बरात विदा होने लगी तो कुलभूषण ने वहाँ से जाने से इनकार कर दिया और अपने पिता से बोले—''इतना दहेज पा लेने के बाद आपका मुझ पर अधिकार नहीं, अब मैं शास्त्री जी का ऋणी हूँ। यहीं रहकर कमाऊँगा और इस ऋण को चुकता करूँगा।'' उत्तर देने के लिए अब उसके पिता के पास शब्द नहीं थे। यदि सभी युवक दहेज न लेने के संकल्प पर अडिग हो जाएँ तो दहेज नामक असुर का अंत समाज से तुरंत हो जाए।

अनुशासन का अनुपालन

सृष्टि का कण-कण अनुशासन से आबद्ध है। सभी निर्धारित नियमों एवं मर्यादाओं से बँधे हुए हैं। शरीर के सभी अंग-प्रत्यंग सुचारु रूप से क्रियाशील होते हैं। इससे शरीर स्वस्थ रहता है। हम तभी तक स्वस्थ हैं, जब तक हमारे शरीर के सारे अंग अपने लिए बने नियमों के अनुसार काम कर रहे हैं। अगर हृदय गुरदा का काम करना शुरू कर दे और यकृत मस्तिष्क का काम करने पर उतारू हो जाए तो व्यतिक्रम एवं विकार पैदा हो जाए। ऐसा कभी संभव नहीं हो सकता, फिर भी सोचने से घोर अव्यवस्था नजर आती है।

आखिर हृदय, मस्तिष्क, गुरदा और यकृत की अपनी स्वतंत्रता है। वे चाहें तो अलग तरीके से क्रियाकलाप कर सकते हैं। ऐसा करने से उन्हें भला कौन रोक सकता है? लेकिन हमारे शरीर का कोई भी अंग ऐसा नहीं करता और शरीर के विधान के मुताबिक अपने लिए तय नियमों पर ही अपने पूरे जीवन चलता रहता है। वह थककर अपना काम करना बंद कर सकता है, लेकिन अपने लिए बने नियमों एवं मर्यादाओं को कभी नहीं छोड़ता। यह शरीर का अनुशासन है। अनुशासन यानी एक ऐसी व्यवस्था, जिसे शरीर ने स्वयं को स्वस्थ रखने के लिए बनाया है।

यही अनुशासन इस ब्रह्मांड में भी दृष्टिगोचर होता है। चंद्रमा अपनी तय गति से पृथ्वी के और पृथ्वी सूर्य के चक्कर लगा रही है—एकदूसरे से निश्चित दूरी बनाए रखते हुए। सौरमंडल में इनके अलावा अनेकानेक ग्रह और तारे भी हैं, वे भी प्रकृति के नियमों में खुद को बाँधे हुए हैं।

इनमें से कोई भी ऐसा नहीं है, जो प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करता हो। कोई भी सूर्य और चंद्रमा को निर्देश नहीं देता है। फिर उन्हें किसका भय है कि खुद को नियमों में बाँधे हुए हैं? क्यों नहीं वे अपनी स्वतंत्रता के अधिकार का इस्तेमाल करते? क्यों नहीं उनके मन में ऐसी इच्छाएँ होतीं कि ब्रह्मांड में कहीं और गश्त लगाकर देखा जाए?

वे ऐसा नहीं करते और सोचते भी नहीं। उन्हें मालूम है कि किसी एक ने भी ऐसा किया तो ब्रह्मांड के लिए विनाशकारी होगा—उस ब्रह्मांड के लिए, जिसमें वे खुद भी विचरण कर रहे हैं और ब्रह्मांड के नियमों पर चलकर ही उसे सुरक्षित बनाए रख सकते हैं। ब्रह्मांड में सभी अनुशासन से बँधे हैं। यही अनुशासन की जिम्मेदारी का एहसास कराता है। यही अनुभूति उन्हें अराजक होने से रोकती है।

स्वतंत्रता और स्वच्छंदता में अंतर है। स्वतंत्रता एक ऐसी चीज है, जो हर किसी को आकर्षित करती है। कौन नहीं चाहता कि वह स्वतंत्र हो। दूसरे की गुलामी किसे पसंद है? लेकिन स्वतंत्रता अपने साथ जिम्मेदारियाँ भी लाती है। वहीं गैरजिम्मेदारी हमें स्वच्छंद बना देती है और स्वच्छंदता का रास्ता पराधीनता की तरफ ही जाता है। सरदियों में हम गरम कपड़ों से बदन ढकने के नियम का पालन नहीं करेंगे तो सरदी हमको जकड़ लेगी। सड़क पर यातायात का नियम तोड़ेंगे तो चालान करवा बैठेंगे। अपने दफ्तर-कारोबार के लिए बने नियमों की यदि हम अवहेलना करेंगे तो मुसीबतों के अधीन होना तय है।

जो नियम-विधान हमारे जीवन को स्वस्थ, सुरक्षित और सुंदर बनाते हैं, उनका पालन करना हमारी जिम्मेदारी है। यह बंधन में पड़ना या पराधीन होना नहीं है। बंधनों व पराधीनता को न्योता हम तब देते हैं, जब स्वयं के नियमों पर नहीं चलते। जो स्वयं के लिए नियम नहीं बनाता और उन पर नहीं चलता, उसे दूसरों के बनाए नियमों पर चलने के लिए तैयार रहना चाहिए।

इसलिए बेहतर यही है कि अपनी आजादी को बनाए रखने के लिए हम अपने लिए विधान बनाएँ और स्वेच्छा से जीवन को उसके नियमों पर चलने के लिए तैयार करें। यह बंधन बहुत खूबसूरत है और हमारे स्वतंत्र बने रहने का आश्वासन देता है। जीवन का उद्देश्य है स्वयं को विकसित करना। सृष्टि में सभी प्राकृतिक नियमों का अनुपालन एवं अनुसरण करते हैं। अत: हमें भी इनका पालन करना चाहिए। ❑

रंगों का जीवंत प्रभाव

रंगों का हमारे जीवन से बहुत गहरा संबंध है। हर व्यक्ति के शरीर का रंग होता है और इसके अतिरिक्त यह प्रचलित है कि हमारे मनोभाव के अनुसार भी हमारे शरीर का रंग बदलता है, जैसे—क्रोध में वह व्यक्ति लाल हो गया, वह शरम से लाल हो गया, उसका सफेद झूठ पकड़ा गया, डर से उसका रंग काला हो गया, रोग में उसके शरीर का रंग पीला पड़ गया, खुशी से उसके गाल गुलाबी हो गए आदि। जिस तरह व्यक्ति के मनोभाव उसके शरीर के रंग को बदलते हैं, उसी तरह विभिन्न तरह के रंग भी उसके मनोभावों को बदलते हैं। हर रंग की अपनी दुनिया है और जीवन पर अपना प्रभाव भी डालती है।

रंग हमारे जीवन को प्रभावित करते हैं और हमें आकर्षित करते हैं। प्रत्येक रंग के अपने-अपने गुण धर्म होते हैं। हमारे जीवन के हर पहलू पर रंगों का गहरा प्रभाव पड़ता है। रंगों के लिए हम जिस तरह से प्रतिक्रिया करते हैं—वे उसी तरह से हमारे मनोवैज्ञानिक, जैविक, शारीरिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य को प्रभावित करते हैं।

शोधों के अनुसार, लगभग सत्तर लाख विभिन्न रंग मनुष्य की नजरों से गुजरते हैं। इसलिए सजावट के लिए या किसी रंग का चयन करते वक्त हमारे पास एक रंग के परिवार से सैकड़ों रंग मिल सकते हैं। रंगों में शीतल एवं अनुप्रेरित करने के गुण पाए जाते हैं। किसी भी रंग को शांत एवं गरम कहना कलर स्पेट्रम और उसके नजदीकी रंग पर निर्भर करता है। रंगों से भरी दुनिया के भी अपने अर्थ हैं; क्योंकि मनुष्य ने हमेशा से ही रंगों का प्रयोग किसी-न-किसी रूप में प्रतीक के तौर पर किया है। रंगों से संबंधित कुछ रोचक बातें हैं।

लाल—गहरा लाल रंग सुदृढ़ माना जाता है; जबकि पेल रेड यानी पिंक जेंटल रंगों की श्रेणी में आता है। अमेरिका और अन्य देशों में भी गुलाबी रंग को लड़कियों से जोड़ा जाता है; जबकि 1920 से पहले इसे लड़कों से संबंधित रंग माना जाता था। मैक्सिको के एजटेक्स ने स्पेन के लोगों को काचनील नामक कीट को मसलकर लाल रंग बनाना सिखाया। लाल रंग को फैशन, शक्ति, वेश, उत्तेजना, प्रेम आदि से जोड़ा जाता है।

पीला—चमकता पीला रंग बहुत जल्द ध्यान आकर्षित करता है। प्राचीन रोम में पीला रंग विवाह में प्रयोग किया जाने वाला सबसे महत्त्वपूर्ण रंग माना जाता था। कई बार पीले रंग को सुरक्षा की दृष्टि से भी पहना जाता है। जैसे सुरक्षाकर्मियों के जैकेट, रेन कोट्स आदि का रंग आमतौर पर पीला ही होता है। पीले रंग को प्रसन्नता, सृजनात्मकता, आत्मविश्वास, आत्मसम्मान आदि भावों से जोड़ा जाता है।

नीला—नीला बहुत प्रचलित रंग है। नीला रंग शांति प्रदान करने वाला माना जाता है। साधारणत: नौकरी के साक्षात्कार के लिए नीला परिधान पहनने की सलाह दी जाती है; क्योंकि यह निष्ठा एवं सच्चाई का प्रतीक है। इसी कारण से अमेरिकी पुलिस अधिकारी पारंपरिक रूप से नीला परिधान पहनते हैं। नीले रंग को देख-भाल, समर्पण, विश्वास, शांति, सत्य आदि गुणों से जोड़ा जाता है।

हरा—हरा रंग आँखों को बहुत भाता है। कई चिकित्सालयों के परिधान और परदे हरे होते हैं; क्योंकि यह रंग मरीजों को शांति देता है। हरा रंग प्रकृति से संबंधित है। माना जाता है कि परियाँ भी इसी रंग के परिधान पहनती हैं। मध्य काल में यूरोप में दुलहनें भी उत्साह को दरसाने के लिए हरे रंग का परिधान पहनती थीं। इसे प्रकृति, ताजगी, वृद्धि, उत्साह, आशा, शांति, समन्वय आदि भावों से जोड़ा जाता है।

सफेद या श्वेत—बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में पश्चिमी देशों की दुलहनों ने शुद्धता के प्रतीक के रूप से सफेद परिधान पहनना शुरू किया। हालाँकि चीन और भारत में सफेद रंग को शोक-प्रतीक माना जाता है। सफेद पर गंदा बहुत जल्द नजर आता है। यही वजह है कि चिकित्सक और नर्स सफेद कोट पहनते हैं, जो यह दरसाता है कि वे समझते हैं कि साफ-सफाई महत्त्वपूर्ण है। श्वेत रंग को पवित्र, पूर्णता, उज्ज्वल, सामंजस्य, ईमानदारी, पारदर्शिता आदि का प्रतीक माना जाता है।

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

काला—काले रंग को हमेशा से गंभीरता से जोड़ा जाता है। पश्चिम में काले रंग के कपड़ों को अंतिम संस्कार और शाम के पहनावे के रूप में प्रयोग किया जाता रहा है। काले रंग को खलनायकों; जैसे ड्रैकुला से जोड़ा जाता रहा है; क्योंकि ये आमतौर पर काले कपड़े ही पहनते थे। औपचारिक, उमंग, निष्ठा, विश्वसनीयता, शक्ति आदि का प्रतीक माना जाता है।

बैंगनी रंग—बैंगनी रंग को हमेशा से विश्वसनीयता से संबंधित रंग माना जाता है; क्योंकि लंबे समय तक इस रंग को पाना बहुत मुश्किल था। क्लियोपेट्रा को 20,000 स्नेल्स (घोंघे) को दस दिन तक भिगोने के बाद उनके शाही कपड़ों के लिए थोड़ी बैंगनी डाई मिलती थी।

नारंगी—रंगों में सबसे ज्यादा ध्यानाकर्षित करने वाला है। पीले रंग के समान ही इससे भी सुरक्षा के लिए पहनने की रीति रही है। शिकारी लोग इस रंग को पहनना ज्यादा पसंद करते हैं। नारंगी को गुलाबी के साथ मिलाकर आकर्षक गुलाबी रंग बनता है; जो बहुत जीवंत रंग है और गरमियों में काफी चलन में रहता है। यह रंग ऊर्जा, ताकत, सुरक्षा, संवेदनशीलता आदि का प्रतीक है।

हमारा शरीर जिन पंचतत्त्वों से मिलकर बना है, उनके भी विशिष्ट रंग हैं—जल का रंग हरा, पृथ्वी का रंग नारंगी एवं बैंगनी, अग्नि का रंग लाल व पीला, आकाश का रंग नीला है। हमारे शरीर में जितने अवयव हैं और सूक्ष्म-से-सूक्ष्म जितनी कोशिकाएँ हैं, उनके भी अपने अलग-अलग रंग हैं। हमारे सौरमंडल में विद्यमान नौ ग्रहों के अपने रंग हैं—चंद्रमा का रंग सफेद, बृहस्पति का रंग पीला, शनि का रंग काला व नीला, मंगल का लाल, बुध का हरा, शुक्र ग्रह का रंग सफेद व सूर्य का रंग सुनहरा है।

इसी तरह ग्रहों की 12 राशियों के भी अपने विशिष्ट रंग हैं, जैसे—मेष का रंग मूँगिया लाल, वृषभ का रंग दूधिया सफेद, मिथुन का रंग हरा, कर्क का रंग गुलाबी, सिंह का रंग पीला, कन्या का रंग स्लेटी या सफेद, तुला का रंग स्लेटी दूधिया या सफेद, वृश्चिक का रंग मूँगिया लाल या गुलाबी, धनु का रंग सुनहरा पीला, मकर का रंग हलका लाल व स्लेटी रंग, कुंभ का रंग नीला गुलाबी या स्लेटी रंग, मीन का रंग पीला व चमकीला सफेद है।

इसी तरह दसों दिशाओं के भी अपने रंग हैं। पूर्व (सूर्य) का रंग चमकीला सफेद, पश्चिम (शनि) का रंग नीला, उत्तर (बुध) का रंग सभी प्रकार के हरे रंग, दक्षिण (मंगल) का रंग लाल व मूँगिया लाल, उत्तर-पूर्व (बृहस्पति) का रंग सुनहरा नीला, दक्षिण-पूर्व (शुक्र) का रंग चाँदी जैसा सफेद, दक्षिण-पश्चिम (राहु) का रंग सभी प्रकार के हरे रंग, उत्तर-पश्चिम (चंद्रमा) का रंग मोतिया सफेद व हलका पीला है।

हमारे शरीर में जो पाँच ज्ञानेंद्रियाँ हैं, उनके भी अपने रंग माने गए हैं—प्रकाश (दृश्य) का रंग लाल, गंध का रंग हरा, ध्वनि (शब्द) का रंग नीला, स्पर्श का रंग बैंगनी और स्वाद (रस) का रंग नारंगी है। इसके अतिरिक्त शरीर में ताप को बढ़ाने वाला रंग पीला व शीतलता प्रदान करने वाला रंग आसमानी है।

इन रंगों के सम्मिश्रण से असंख्य एवं अनगिनत रंगों का सृजन किया जा सकता है। रंग हमारे मन एवं भाव को आंदोलित, प्रेरित एवं प्रभावित करते हैं। प्रत्येक का अपनी पसंद का रंग होता है। जब हम अपनी रुचि एवं पसंद के रंग का चुनाव एवं प्रयोग करते हैं तो हमारी कार्यक्षमता एवं सृजनशीलता बढ़ जाती है। इसलिए हमें अपनी अभिरुचि के अनुसार रंगों से संबंधित चीजों का चयन करना चाहिए। ❑

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

प्रदूषण की नई चुनौती

अभी तक यही माना जाता रहा है कि एंटीबायोटिक दवाओं के दुरुपयोग या अत्यधिक सेवन से जीवाणुओं में प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न होती है। अब नए शोध से पता चला है कि भारी धातुएँ, माइक्रो-प्लास्टिक (प्लास्टिक के कण) और स्वयं एंटीबायोटिक भी जीवाणुओं से एक से अधिक जैवप्रतिरोधी दवाओं के प्रति प्रतिरोधक क्षमता विकसित करने के लिए जिम्मेदार हैं।

वैज्ञानिकों के अनुसार औद्योगिक एवं खनन अपशिष्ट, सीवेज प्रदूषण, कृषि और जलीय कृषि से प्रभावित पर्यावरण एंटीबायोटिक दवाओं के प्रति प्रतिरोधक क्षमता रखने वाले बैक्टीरिया के विकास के प्रमुख आधार बन रहे हैं। पर्यावरण में मौजूद भारी धातुओं और बारीक प्लास्टिक कणों जैसे प्रदूषकों की वजह से रोगजनक जीवाणुओं पर चयन का दबाव बढ़ रहा है और उनमें एक प्रकार का सह-चयन तंत्र विकसित हो रहा है।

इस कारण उन जीवाणुओं में एंटीबायोटिक दवाओं के प्रति प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि हो रही है। एक से अधिक दवाओं के प्रति प्रतिरोधक क्षमता रखने वाले रोगजनक जीवाणुओं की बढ़ती संख्या चिंता का विषय बन रही है। गोवा विश्वविद्यालय के सूक्ष्मजीव वैज्ञानिक डॉ० मिलिंद नायक का कहना है कि 'जो रोगाणु पहले एंटीबायोटिक दवाएँ लेने से नियंत्रित हो जाते थे, अब उन पर एंटीबायोटिक दवाओं का प्रभावी असर नहीं पड़ रहा है।'

रोगाणुओं में देखी जा रही प्रतिजैविक प्रतिरोधकता एक विकासशील प्रक्रिया है, जो रोगजनक के चयन पर आधारित होती है। रोगजनक जीवाणुओं ने अपने प्रदूषकों के साथ मिलकर अपने भीतर सह-चयन तंत्र विकसित कर लिया है, जिससे उनमें एक से अधिक दवाओं के प्रति प्रतिरोधक क्षमता विकसित हो रही है। भविष्य में इस तरह के रोगजनक जीवाणु मानव स्वास्थ्य के लिए एक बड़ी चुनौती खड़ी कर सकते हैं। जीवाणुओं की आनुवांशिक बनावट के कारण उनमें मूलभूत प्रतिरोधक क्षमता का होना स्वाभाविक है।

शोध पत्रिका कीमोस्फियर में प्रकाशित एक ताजा अध्ययन के अनुसार अब प्रदूषकों का बढ़ता स्तर भी जीवाणुओं की प्रतिरोधक क्षमता में बढ़ोत्तरी का जरिया बन रहा है। जीवाणुओं में प्रतिरोधक क्षमता के लिए आनुवांशिक स्तर पर जीन आधारित दो प्रकार की प्रतिरोधक प्रक्रियाएँ— सह-प्रतिरोध एवं क्रॉस-प्रतिरोध काम करती हैं। जब जीवाणु विभिन्न यौगिकों के प्रतिरोध के लिए केवल एक जीन के उपयोग से प्रतिरोध जताता है तो उसे क्रॉस-प्रतिरोध कहा जाता है। जबकि एंटीबायोटिक जैसे यौगिकों के प्रति प्रतिरोध दरसाने के लिए जब जीवाणु अपने दो या उससे अधिक विभिन्न प्रतिरोधी जीनों का उपयोग एक साथ करता है तो वह सह-प्रतिरोध कहलाता है।

कई तरह की बीमारियाँ; जैसे—टाइफाइड, निमोनिया आदि फैलाने वाले रोगजनक जीवाणु अपने एंटीबायोटिक प्रतिरोधी जीन्स के साथ-साथ भारी धातुओं और माइक्रो-प्लास्टिक प्रतिरोधी जीन्स वाले प्लास्मिड्स, ट्रांसपोजन्स तथा इंटीग्रन्स जैसे आनुवांशिक तत्त्वों के साथ मिलकर सह-प्रतिरोधकता उत्पन्न करते जा रहे हैं। यह सह-प्रतिरोधकता क्षैतिज आनुवंशिक विनिमय द्वारा पिछली पीढ़ियों और डीएनए के आनुवंशिक पुनर्संयोजन से विरासत में मिले परिवर्तन के शीर्ष संचरण के माध्यम से जीवाणुओं में आगे प्रसारित हो रही है।

एंटीबायोटिक दवाओं को बनाने वाली फर्मों से निकलने वाले अपशिष्ट में भी एंटीबायोटिक यौगिकों की प्रचुर मात्रा होती है, जो असुरक्षित निपटारे के कारण जलीय और स्थलीय पारिस्थितिक तंत्रों में पहुँच जाती है। इस माध्यम से मनुष्य के अलावा अन्य जीवों में भी यह पहुँच जाती है। पशु-उत्पादन बढ़ाने के लिए बड़ी मात्रा में प्रयुक्त एंटीबायोटिक्स के कारण पशुओं के मल-मूत्र में भी एंटीबायोटिक्स पाए जाते हैं। जब कृषि के लिए खाद के रूप में इनका उपयोग किया जाता है तो वे खेतों में पहुँचकर मिट्टी और फिर वर्षा के माध्यम से जलाशयों तक पहुँचकर जल को प्रदूषित करते हैं।

एंटीबायोटिक्स का सेवन करने वाले रोगियों के मल-मूत्र में भी एंटीबायोटिक्स के सक्रिय अंश होते हैं, जो सीवेज के गंदे पानी में पहुँच जाते हैं। गोवा विश्वविद्यालय के जैव प्रौद्योगिकी विभाग के अध्यक्ष का मानना है कि विभिन्न मानवजनित गतिविधियों के कारण लगभग सभी पारिस्थितिक तंत्रों में एंटीबायोटिक पहुँच रहे हैं। भारी धातुओं की विषाक्तता से बचने के लिए जीवाणुओं ने अपने भीतर विशेष तंत्र विकसित कर लिया है। जीवाणुओं में विकसित भारी धातुओं के प्रति प्रतिरोधक क्षमता एंटीबायोटिक दवाओं से लड़ने की उनकी क्षमता को मजबूत कर रही है। इस कारण अनेक रोगजनक जीवाणु कैडमियम, क्रोमियम और पारे जैसी भारी धातुओं और माइक्रो-प्लास्टिक जैसे प्रदूषकों के साथ सह-चयन प्रक्रिया करने लगे हैं।

संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम का अनुमान है कि सन् 2050 तक मछलियों की तुलना में महासागरों में माइक्रोप्लास्टिक की मात्रा अधिक होगी। डॉ0 मिलिंद के अनुसार, जीवाणु माइक्रो-प्लास्टिक द्वारा अपनी कोशा सतह पर बायोफिल्म बनाने में सक्षम हो रहे हैं। भविष्य में माइक्रो-प्लास्टिक जीवाणुओं को एंटीबायोटिक प्रतिरोधी बनाने वाला एक बड़ा वाहक सिद्ध हो सकता है।

पिछले दो सालों में हुए कुछ शोधों के परिणामों से पता चला है कि प्राकृतिक रूप से मिट्टी के कटाव की प्रक्रिया के दौरान माइक्रो-प्लास्टिक कुछ हानिकारक रसायन स्रावित करते हैं, जिनसे सतह पर डीडीटी, टायलोसिन जैसे कार्बनिक प्रदूषिक अथवा अपशिष्टों में उपस्थित एंटीबायोटिक और भारी धातुएँ; जैसे—निकल, कैडमियम, लेड आदि चिपक जाते हैं। इस प्रकार माइक्रो-प्लास्टिक इन खतरनाक प्रदूषकों के स्रोत और वाहक दोनों के रूप में काम कर रहा है।

वैज्ञानिकों ने वाइब्रियों नामक मानव रोगजनक को एक ऐसे खतरनाक सहयोगी के तौर पर चिह्नित किया है, जो समुद्री पर्यावरण में माइक्रो-प्लास्टिक को फैलाने के लिए संभावित वाहक का काम कर सकता है। निश्चित तौर पर दुनिया भर में स्थलीय और जलीय वातावरण में भारी धातुओं, एंटीबायोटिक और माइक्रो-प्लास्टिक प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए रणनीतियों को विकसित करने की आवश्यकता है।

जब तक हम इस संदर्भ में कटिबद्ध नहीं होंगे, संकल्पित नहीं होंगे; परिस्थितियाँ और भी कड़ी चुनौतियाँ प्रस्तुत करती रहेंगी। अतः इस समस्या का समाधान समुचित ढंग से करना चाहिए। ❑

ईरान के बादशाह ने एक नगर पर चढ़ाई की। नगर छोटा था और उनके पास अधिक सेना भी न थी, अतः उन्होंने बिना लड़े ही हार स्वीकार कर ली। बादशाह ने नगर में घोषणा करा दी कि पराजय की स्थिति में नगर की सभी महिलाएँ अपनी कीमती वस्तुएँ लाकर नगर के दरवाजे पर रख दें।

अगले दिन बादशाह ने देखा कि महिलाएँ बड़ी-बड़ी गठरियों में कुछ लाकर नगर द्वार पर रख रही हैं। बादशाह की उत्सुकता हुई कि इन बड़ी गठरियों में क्या है? खुलवाने पर पता चला कि इनमें उन महिलाओं के पति हैं। उसने क्रोध में महिलाओं से पूछा—''तुमसे कीमती वस्तु लाने को कहा था तो यह क्या ले आई हो?'' महिलाओं ने उत्तर दिया—''बादशाह! हमारे लिए तो यही सबसे कीमती हैं, हम आपके लिए और क्या लातीं।'' बादशाह को महसूस हुआ कि जहाँ की महिलाएँ इतनी पतिव्रता हों, उस नगर को लूटा नहीं जा सकता। उसने उस नगर को पुनः स्वतंत्रता प्रदान कर दी।

हमारी संस्कृति के जीवन सिद्धांतों में मनुष्य के लिए उत्कृष्टतम मार्ग—धर्म का मार्ग है। यहाँ धर्म को किसी वेशभूषा, परंपरा, मत, संप्रदाय के अर्थ में नहीं अपितु कर्त्तव्य, अनुशासन, जिम्मेदारी, नैतिकता जैसे जीवनमूल्यों के रूप में स्वीकार किया गया है। इसलिए मनुष्य जीवन के समस्त कार्यों—कर्त्तव्यों को भारतीय जीवनपद्धति में धर्म के साथ जोड़ा गया है। जन्म से मृत्यु तक किए जाने वाले सभी कर्त्तव्यों का बोध कराने के लिए धर्म का ही अवलंबन किया गया है।

मनुष्य का प्रत्येक कर्म, आचरण, व्यवहार किसी-न-किसी कर्त्तव्यरूपी धर्म से अनुशासित है। स्वयं के लिए स्वधर्म, परिवार-समाज के लिए पुत्रधर्म, पितृधर्म, मातृधर्म, मित्रधर्म, नैतिक धर्म, अतिथि धर्म और नागरिक धर्म, राष्ट्रधर्म जैसे सैकड़ों कर्त्तव्य व अनुशासनरूपी धर्म से हमारे जीवन को संयमित, विकसित और सामंजस्यपूर्ण जीवनपद्धति में बाँधने और चलाने का मार्ग शास्त्रों में निहित है। धर्म-कर्त्तव्यों से बुनी गई इसी जीवनपद्धति पर चलकर हमारे सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक जीवनमूल्यों का पोषण और संरक्षण करने में हम युग-युगांतर से सफल रहे हैं।

विविधता में एकता, नैतिकता में आध्यात्मिकता, आत्मा में परमात्मा और परमात्मा में विश्व-वसुधा के समन्वय की मूल शक्ति का केंद्र हमारे शास्त्रों में वर्णित यही कर्त्तव्यरूपी धर्म-सिद्धांत है, लेकिन प्राचीनकाल से लेकर आज तक इतिहास साक्षी है कि जब-जब धर्म की डोर कमजोर पड़ी है, मनुष्य जीवन के पग इस कर्त्तव्य पथ से विमुख हुए हैं तब-तब व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और संपूर्ण मानव जाति पर संकट गहराया है। यह भी सच है कि ऐसे संकट से उबारने हेतु हर काल में महापुरुषों, अवतारों, दिव्यात्माओं ने आकर पुनः धर्म की स्थापना का महान पुरुषार्थ किया है।

भगवान श्रीराम, श्रीकृष्ण, बुद्ध, महावीर, आचार्य शंकर, महर्षि दयानंद, श्रीरामकृष्ण परमहंस, श्रीअरविंद, महर्षि रमण और पूज्य गुरुदेव आचार्य श्रीराम शर्मा तक की सुदीर्घ परंपरा में सभी के समक्ष धर्ममार्ग से भटकती मानवता को पुनः अपने कर्त्तव्य पथ पर वापस लाने का पवित्र उद्देश्य निहित रहा है। इन सभी महान आत्माओं ने धर्म-स्थापना के पवित्र उद्देश्य को सामने रखकर अपने-अपने कालखंड में युगधर्म का निर्वाह किया है।

युगधर्म का तात्पर्य है समय की माँग को पूरा करना। समय, देश, काल, परिस्थिति के अनुसार आचरण और व्यवहार करना। मनुष्य जीवन के साथ जुड़े अन्य सभी कर्त्तव्यों, धर्मों में युगधर्म सबसे प्रधान और अनिवार्य कहा गया है।

युगधर्म की आवश्यकता तब पड़ती है, जब अन्य कर्त्तव्य धर्मों का जीवन में ह्रास होने लगता है। यह युगधर्म रूपी कर्त्तव्य उस समय उत्पन्न होता है—जब व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की चिंतन-चेतना अधर्म की अनुगामी बनकर दुष्प्रवृत्तियों, दुराचारों की पोषक बन जाती है और तब चारों ओर दुःख, पीड़ा, पतन, विक्षोभ, भय, अशांति, हिंसा, क्रूरता, स्वार्थ, अहं, झूठ-फरेब के दृश्य दिखाई देने लगते हैं।

ऐसे ही विषम काल में युगधर्म की संवाहक चेतना प्रकट होती है और मनुष्य मात्र को संकट से उबारकर कल्याणकारी दिशा में आगे बढ़ने का मार्ग दिखाती है। हमारे बीच परमपूज्य गुरुदेव एक ऐसी ही युगधर्म की संवाहक चेतना बनकर प्रकट हुए हैं। उनके संपूर्ण जीवन और चिंतन का केंद्र युगधर्म का निर्वाह, समय की माँग को पूरा करना रहा है।

वर्तमान के युगधर्म को पहचानने और उसके साथ जुड़ने का आह्वान पूज्यवर के संदेशों में सर्वत्र दिखाई देता है। उन्होंने दुश्चिंतन, दुर्बुद्धि, दुष्प्रवृत्तियों, दुर्भावनाओं को सबसे बड़े संकट के रूप में पाया और सच्चिंतन, सत्प्रवृत्तियों के माध्यम से इसके समाधान का मार्ग प्रस्तुत किया है। वे जब कहते हैं कि समयदान ही युगधर्म है तो इसका तात्पर्य यही है कि प्रत्येक व्यक्ति को जीवन का कुछ समय अच्छे विचारों, सद्भावनाओं के पोषण और प्रचार-प्रसार में लगाना ही चाहिए।

कलियुग में दान को सबसे बड़ा धर्म कहा गया है। स्मृति ग्रंथों में उल्लेख है कि सतयुग में सबसे बड़ा धर्म तप है, त्रेतायुग में ज्ञान, द्वापरयुग में यज्ञ और कलियुग में दान ही सबसे बड़ा धर्म है। पूज्य गुरुदेव ने दान के लिए समयदान को सर्वोत्तम धर्म कहा है। धन, साधन, संपदा, सामग्री का दान तो लोग प्राय: करते रहते हैं, सबके लिए सहज भी है, परंतु समयदान इनसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण और आवश्यक है।

ऐसे लोगों की कमी नहीं है, जिनके भीतर सद्भावनाओं और श्रेष्ठ चिंतन की धाराएँ बह रही होती हैं, परंतु जीविकोपार्जन के कार्य व अन्य जिम्मेदारियों-क्रियाकलापों में ही उनका पूरा समय लग जाता है, फलस्वरूप सत्प्रवृत्तियों के प्रचार-प्रसार और दुष्प्रवृत्तियों के उन्मूलन की दिशा में कोई सार्थक योगदान नहीं कर पाते हैं। इसके लिए समयदान का मार्ग ही सर्वोत्तम है। अपने समय का एक छोटा-सा अंश नियमित रूप से आत्मकल्याण और लोक-कल्याण के कार्यों में नियोजित करने मात्र से ही युगधर्म का निर्वाह हो जाता है।

अखिल विश्व गायत्री परिवार के रूप में करोड़ों लोगों का विश्वव्यापी संगठन, जो आज प्रत्यक्ष दिखाई देता है और युगधर्म के निर्वाह में सतत संलग्न है, इसकी मूल धुरी समयदान ही है। इस संगठन का तात्पर्य ही है कि अच्छे विचार, अच्छी भावनाओं वाले ऐसे लोग, जो अपने परिचय का कुछ अंश नियमित रूप से लोक-कल्याण और मानवता के उत्थान के कार्यों में नियोजित करने हेतु संकल्पित हैं।

संगठन के रूप में कार्य करने की आवश्यकता इसलिए समझी गई है; क्योंकि वर्तमान युग में दुष्प्रवृत्तियों की विस्तारक शक्तियाँ आपस में मिलकर व्यापक स्तर पर कार्य कर रही हैं और शक्ति व समाज के चिंतन, चरित्र, व्यवहार को निरंतर खोखला बना रही हैं। ऐसे में श्रेष्ठ जनों का संगठित रूप में मिलकर बुराइयों के विरुद्ध खड़े होना ही श्रेयस्कर उपाय है। अपना देश ही नहीं, अपितु पूरी विश्वमानवता आज जिस धर्मसंकट के कुचक्र में फँसकर कराह रही है, मनुष्य जीवन पीड़ा-पतन की पराकाष्ठा तक जा चुका है, इनसे मुक्ति और भावी कल्याण को सुनिश्चित करने के लिए संगठन की शक्ति ही युगधर्म का नेतृत्व करने में सक्षम है।

समय की माँग है कि मनुष्य होने के नाते प्रत्येक को मानवता पर छाए दुर्बुद्धिजन्य संकट के निवारण में अपनी भागीदारी अनिवार्य रूप से सुनिश्चित करनी चाहिए। जहाँ हैं, जैसे हैं, वहीं से सच्चिंतन और सद्भावनाओं के विस्तार में संलग्न होकर युगधर्म की चुनौती शिरोधार्य कर लेनी चाहिए।

यदि कोई यह सोच बैठे कि यह तो हमारा काम नहीं है और न इसके लिए हमारे पास कोई समय है तो ऐसे लोगों में सद्बुद्धि के लिए यही कहा जाएगा कि जहाँ आप रहते हैं वहाँ भगवान न करे, परंतु यदि किसी कारण आग लग जाए, बाढ़ आ जाए तब? तब यही होगा कि आप बिना एक क्षण गँवाए, सब कुछ छोड़कर जीवन सुरक्षा, आपदा-निवारण के कार्य में दौड़ पड़ेंगे। सामान्य कर्त्तव्यों-धर्मों को त्यागकर आपद्धर्म का निर्वाह करेंगे।

समझो कुछ ऐसी ही आपदा मनुष्य जीवन में आ चुकी, धरती से मानवता के साम्राज्य को जलाकर नष्ट कर देने वाली आग दावानल का रूप ले रही है। शरीर, मन और आत्मा के स्तर पर जीवनशक्ति और ऊर्जा से मनुष्य निरंतर हीन बनता जा रहा है। चिंतन की संकीर्णता, विचारों की विषाक्तता, भावनाओं की निर्दयता-निष्ठुरता ने मनुष्य जीवन को आदर्श मूल्यों से रिक्त कर डाला है। चाहे-अनचाहे सभी एकदूसरे की पीड़ा, पतन, पराभव का कारण बन बैठे हैं।

इक्कीसवीं सदी के दो दशक बीत चुके हैं। सुख, शांति और आनंद की शाश्वत इच्छा करने वाला मनुष्य आज जिस स्थान पर है, वह दुर्भाग्यपूर्ण है। अंतर्मन में विक्षोभ, अशांति, भय, अस्थिरता, असंतोष, चिंता, तनाव और द्वंद्व जैसी विकृतियों ने स्थान ले लिया है और बाह्य जगत् में प्रगतिवादी आधुनिकता, भोगवाद, पूँजीवाद, आतंक, भ्रष्टाचार, महामारी, असुरक्षा, स्वार्थ-अहंकार से सनी लड़ाइयाँ—इन सब आसुरी वृत्तियों के दुष्प्रभाव में घिरा आज का मनुष्य किंकर्त्तव्यविमूढ़ दिखाई देता है। भीतर-बाहर, दोनों ही ओर जीवन के अस्तित्व को निगल जाने वाली आग लगी है।

यह संकट जीवन और जीवनमूल्यों पर ही नहीं, अपितु जीवन के अस्तित्व पर भी है। जब चारों ओर आग लगी हो तो यह निश्चित है कि देर-सबेर हम तक भी आ ही जाएगी। इससे बचने का उपाय मात्र यही है कि आग बुझाने की दिशा में चला जाए। पानी, मिट्टी आदि जो कुछ भी आग बुझाने के संसाधन हाथ लगें, उन्हें लेकर आपद्धर्म के कार्य में जुट जाएँ। यह भी न बन पड़े तो कम-से-कम उन लोगों के साथ खड़े हो जाएँ, जो पहले से आग बुझाने के कार्य में लगे हैं, उन साहसी जनों का उत्साह बढ़ाएँ।

परमात्मा ने मुनष्य मात्र को उस संभावना से युक्त बनाया है कि जिसके संकल्प, इच्छा और प्रचंड-पुरुषार्थ के समक्ष दुनिया का कोई भी संकट टिक नहीं सकता। आज के युग संकट के समाधान के लिए भी दृढ़ इच्छाशक्ति और प्रबल पुरुषार्थ की आवश्यकता है। समय की माँग है कि मनुष्य के जीवन में चहुँओर जो आग लगी दिख रही है, उसका मूल कारण विकृत चिंतन और दूषित भावनाएँ हैं। इस आग को बुझाने का एकमात्र उपाय है सच्चिंतन और सद्भावनाओं का प्रसार-विस्तार। दुष्प्रवृत्तियों, दुष्कर्मों, दुराचरण के मार्ग पर भटकते व्यक्तियों, समाज और विश्व को सच्चिंतन और सद्भावनाओं के द्वारा ही दु:खद नियति से बचाकर सुखद कल्याणकारी मार्ग पर लाया जा सकता है।

इस युग का युगधर्म यही है कि हम सभी सामान्य कर्त्तव्य धर्मों की चिंता किए बगैर युगधर्म के आह्वान को स्वीकार करें और सत्प्रवृत्तियों, सच्चिंतन और सत्कर्म के कार्यों में अपनी हिस्सेदारी सुनिश्चित करें। समयदान ही युगधर्म का मर्म समझें-समझाएँ तथा विश्वमानवता के समक्ष उज्ज्वल भविष्य के उत्तराधिकारी बनें। ❑

सोमदत्त नामक एक ब्राह्मण राजा भोज के पास मिलने के लिए पहुँचा और बोला—"महाराज! आपकी आज्ञा हो तो उज्जयिनी के नागरिकों को भागवत कथा सुना आऊँ। मुझे कुछ दक्षिणा प्राप्त हो जाएगी।" राजा बोले—"आप अभी कुछ और दिन भागवत पाठ का अभ्यास कीजिए।" ब्राह्मण ने सारी भागवत कंठस्थ कर ली और पुन: राजदरबार में उपस्थित हुआ, परंतु उसे इस बार भी सकारात्मक उत्तर न मिला। इस प्रकार वह ब्राह्मण कई बार राजा के समक्ष उपस्थित हुआ, पर उसे हर बार निराश ही लौटना पड़ा।

किंतु भागवत के निरंतर पाठ से उसके अंतर्मन में धीरे-धीरे भगवान के प्रति निष्ठा जाग्रत हो गई। उसके मन से तुच्छ कामनाएँ तिरोहित होने लगीं और सात्त्विक निष्ठाएँ जन्म लेने लगीं। इस बार जब वह बहुत दिनों तक राजदरबार में नहीं पहुँचा तो राजा भोज ने उसका पता लगवाया। सारी स्थिति का पता चलने पर उन्होंने सोमदत्त को उज्जयिनी बुलवाकर भागवत कथा सुनाने का आग्रह किया।

आश्चर्यचकित सभासदों ने पूछा—"यह ब्राह्मण जब स्वयं कई बार यहाँ आया तो आपने इसे उपेक्षित किया और आज आप इसे स्वयं भागवत कथा के वाचन का निमंत्रण देने पहुँचे। ऐसा क्यों ?" राजा बोले—"पहले यह धन के लोभ में कथा करना चाहता था, पर अब उसके अंदर से प्रभु-निष्ठा के बोल निकलते हैं।" सच्ची श्रद्धा, निष्ठा का मूल्य नहीं होता।

ज्ञान-आधारित-शिक्षा

शिक्षा का उद्देश्य है—विद्यार्थी को योग्य बना देना। योग्यता दरसाने के लिए अनेक बिंदुओं को स्पष्ट किया जा सकता है—व्यक्ति ज्ञानसंपन्न बने, आत्मनिर्भर और आत्मनियंत्रित बने। जीवन के सम्यक निर्माण के लिए ज्ञान का विकास आवश्यक है। ज्ञानसंपन्न बनना अच्छी बात है, किंतु ज्ञान के साथ-साथ आचरण का भी विकास होना चाहिए। आचारविहीन व्यक्ति विद्वान बन जाने के बाद भी उस प्रतिष्ठा को प्राप्त नहीं कर सकता है, जो एक सामान्य व्यक्ति सहजता से प्राप्त कर लेता है।

विद्यार्थी में ईमानदारी के प्रति निष्ठा जाग जाए, विनम्रता का भाव जाग जाए और नशामुक्त जीवन जीने का संकल्प जाग जाए तो वह एक श्रेष्ठ नागरिक अथवा आचारसंपन्न नागरिक बन सकता है। पिछले कई साल से बोर्ड की परीक्षा में पास होने वाले छात्र अंकों के नए कीर्तिमान स्थापित कर रहे हैं। छात्रों ने आइपीएसई की परीक्षा में शतप्रतिशत अंक हासिल कर नया शिखर छू लिया है। इस उपलब्धि के लिए अनेक अध्यापक तथा अभिभावक बधाई के पात्र हैं, परंतु कुछ विकट सवाल भी मुँहबाए खड़े हैं, जिनको नजरअंदाज करना असंभव है।

क्या नई पीढ़ी अपने अग्रजों—पूर्वजों से कहीं अधिक बुद्धिमान है या फिर परीक्षा का स्तर इतना गिर गया है कि 95-99 प्रतिशत हासिल करना बहुत आसान हो गया है? औसत छात्र भी इम्तिहान पहले दरजे में पास करते हैं और कॉलेज में दाखिले के वक्त 90 प्रतिशत अंक वाले भी दर-दर मारे-मारे भटकते हैं। कुछ अव्वल दरजे वाले पत्राचार से ही आगे की पढ़ाई जारी रखने को मजबूर होते हैं। एनसीईआरटी के पूर्व निदेशक कृष्ण कुमार का मानना है कि सबसे बड़ा दोष उस परीक्षा-प्रणाली का है, जिसमें बहुविकल्पीय प्रश्न पूछे जाते हैं, जिनमें मॉडल उत्तर रटने वाले छात्र ही सर्वाधिक अंक पाते हैं। साल भर पढ़ाई परीक्षा की चुनौती का सामना करने के लिए करवाई जाती है। 'रटंत विद्या घोटंत पणि' का सूत्र नौका पार लगा सकता है।

न तो विषयवस्तु से छात्र-छात्राओं का वास्ता रह गया है और न ही मौलिकता, सृजनात्मक प्रतिभा से रोजमर्रा की जिंदगी के लिए परमावश्यक व्यावहारिक ज्ञान की चिंता भी किसी को ही बची है। सहिष्णुता, मानवीय संवेदना, सहानुभूति, नैतिकता का स्कूली शिक्षा से कोई नाता नहीं रह गया है। हर परीक्षा अगली परीक्षा की तैयारी वाली सीढ़ी की एक पायदान भर बन गई है। आगे बढ़ने के लिए अधिकतम नंबर जुटाने के लिए कोचिंग और ट्यूशन ही डूबते का सहारा हैं।

सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है कि प्राथमिक स्तर से अखिल भारतीय प्रशासनिक सेवाओं की प्रतियोगिताओं तथा शोध के लिए प्रत्याशियों को कसौटी पर कसने के लिए भी 'बहुविकल्पीय प्रश्न' ही इम्तिहान में आते हैं। पीएमटी हो या आईआईटी का दाखिला—कहीं कोई नाव नहीं, जिसका सहारा परीक्षा की वैतरणी को पार कराए। कुछ मुद्दे और भी हैं, जिन्हें हम अनदेखा करते हैं। क्या स्कूली शिक्षा की दुर्गति के लिए सरकारी तथा निजी स्कूलों के बीच भेदभाव करने वाली जाति-व्यवस्था सरीखी मानसिकता जिम्मेदार नहीं है?

वंचित, शोषित तबके के बच्चे ही प्रांतीय बोर्डों की मान्यता वाले सरकारी स्कूलों में पढ़ते हैं। यहीं अध्यापकों की जिंदगी भी सबसे दयनीय नजर आती है। फिर नंबर आता है सीबीएसई के पाठ्यक्रम के अनुसार संचालित निजी, महँगे तथा केंद्रीय, सैनिक, नवोदय विद्यालयों का। कुछ समय पहले तक इनके भी ऊपर बिराजते थे मशहूर पब्लिक स्कूल, जिनका आम जनता से कोई वास्ता न था—दून स्कूल, मेयो कॉलेज, सेंट पॉल, लव डेल, लॉरेंस स्कूल आदि।

सर्वश्रेष्ठ की सूची में सबसे ऊपर 'इंटरनेशनल बैकोलरेट' की तैयारी करवाने वाले स्कूल हैं, जिनके छात्र विदेशी विश्वविद्यालयों में बिना झंझट प्रवेश ले सकते हैं। शासक वर्ग इसीलिए न तो आम स्कूलों की लाइलाज बीमारी से चिंतित है और न ही आसमान छूते अंकों की महामारी से।

समस्या तो उन किशोर-किशोरियों की है, जो 98-99 प्रतिशत अंक हासिल नहीं कर पाते। उनके मन में भयंकर हीनता की भावनाएँ जड़ें जमाने लगती हैं। अभिभावकों की निराशा के लिए वे खुद को जिम्मेदार समझने लगते हैं, हर जगह कम अंकों की वजह से प्रताड़ित होते हैं और कुंठित, तनावग्रस्त होकर तो नशे से जीवन नष्ट करते हैं या असामाजिक आचरण की दिशा में अग्रसर हो पढ़े-लिखों को निकम्मा साबित करने में जुट जाते हैं।

यह स्थिति समाज के लिए बेहद चिंताजनक है। राजनीति और अर्थव्यवस्था के तमाम विकार शिक्षा के मूल्यों तथा संस्कारों के घनघोर अभाव से ही उपजे हैं। मूल्य और संस्कार बहुवैकल्पिक प्रश्नों के आदर्श उत्तरों की कुंजी से प्राप्त नहीं किए जा सकते हैं। न ही गलाकाट प्रतिस्पर्धा की तैयारी करवाने वाले कोचिंग संस्थान या कुशल ट्यूटर यह उपहार या वरदान दे सकते हैं।

यह बेहद जरूरी है कि हम मातृभाषा की शिक्षा के माध्यम की उपेक्षा कर, पारिवारिक-स्थानीय विरासत से वंचित करते हुए अपने बच्चों को पँगु न बनाएँ। साक्षरता को शिक्षा का पर्याय समझना आत्मघातक है। बोर्ड की परीक्षा में अंकों की मरीचिका से मुक्ति के बिना हमारा कल्याण नहीं है। विद्यार्थी में अच्छे संस्कारों का विकास हो। वह ज्ञानसंपन्न होने के लिए अभ्यास करता रहे।

चरित्रसंपन्नता के लिए ईमानदारी, विनम्रता आदि को अपने आचार-व्यवहार में लाएँ और स्वस्थ शरीर एवं चरित्र संपन्नता के लिए नियमित आसन-प्राणायाम, ध्यान आदि के प्रयोग किए जाएँ और साथ में नशामुक्ति के अभ्यास भी लाए जाएँ।

अगर विद्यार्थी अच्छे होंगे तो आशा की जा सकती है कि हमारे देश का भविष्य भी अच्छा होगा। कोई भी विद्यार्थी बुरा नहीं होता, बस, उसकी मौलिक विशेषताओं की परख की जानी चाहिए। ❑

आचार्य उपकौशल यात्रा पर निकले थे, परंतु आधे मार्ग में पहुँचने पर ही रात हो गई और उन्हें वन में एक वृक्ष के नीचे ही रुकना पड़ा। सोने के कुछ देर पश्चात ही उन्हें किसी के कराहने की आवाज सुनाई पड़ी। उन्होंने लकड़ियाँ जलाकर देखा, पर कोई दिखाई नहीं दिया। तब उन्होंने कहा—''यहाँ कौन है? सामने क्यों नहीं आते?'' उत्तर मिला—''हे तपस्वी! आप तो विज्ञ हैं। मैं निकृष्ट प्रेत आपके ब्रह्मतेज के समक्ष कैसे प्रकट हो सकता हूँ? कृपा कर मेरे उद्धार का मार्ग बताइए।'' आचार्य ने उसकी इस दशा का कारण पूछा। उसने बताया—''भोगों को प्राप्त करने के लिए मैंने कभी भी कर्मों की नैतिकता की परवाह नहीं की और आजीवन ऐसा जीवन बिताने पर भी मेरी वासनाओं की संतुष्टि न हो सकी, फलस्वरूप मृत्यु के उपरांत प्रेतयोनि में अत्यंत विक्षुब्धता के साथ भटक रहा हूँ।'' ''यह मन ही अनियंत्रित होने पर पतन का कारण बनता है और यदि साध लिया जाए तो यही मुक्ति का हेतु भी सिद्ध होता है। आत्मतत्त्व की प्राप्ति ही जीवन का चरमोद्देश्य है, इसे समझकर देह व मन को साधते हुए अभीष्ट मार्ग पर चलने से ही मनुष्य का सभी प्रकार से कल्याण होता है।''—ऐसा कहते हुए आचार्य ने अपने तप, पुण्य का एक अंश देकर उसके कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया, जिसके फलस्वरूप उस प्रेत का पुनर्जन्म हुआ और स्मृति रहने के कारण वह आत्मसाधना और लोकसेवा करते हुए मुक्ति-पथ पर प्रशस्त हो गया।

प्रसन्नता की प्राप्ति का मार्ग

हमारे चेतन-अचेतन में प्रसन्नता की गहरी प्यास है। जब भी अवसर मिलता है, तब हम सभी प्रसन्नता की तलाश में जुट जाते हैं। यह एक ऐसी तलाश है, जो हमारी सारी चाहतों-इच्छाओं, आकांक्षाओं के पीछे खड़ी है, जो सबमें बराबर है।

प्रसन्नता, जिसे खोजना, प्राप्त करना और बाँटना सभी चाहते हैं। सफलता के शिखर पर पहुँचने से लेकर जिंदगी की राहों में हरेक मोड़ पर, नाते-रिश्तों-संबंधों की सभी डोर में, साधन, सुविधा, सम्मान के संग में, देश-काल-परिस्थितियों की सभी परिधियों में हम सिर्फ और सिर्फ प्रसन्नता का ही अनुभव तो प्राप्त करना चाहते हैं।

जीवन के हर क्षण में हम प्रसन्नता को साथ चाहते हैं। चाहे प्रसन्नता कहो या प्रफुल्लता—सबके लिए अपने-अपने मनोभावों के अनुसार इसकी अलग-अलग अनुभूति होती है। आप, हम व सभी इसको पाने की दौड़ में सम्मिलित हैं। हमारी कल्पनाओं में, सोच में और व्यवहार में सिर्फ वही चीजें गहरा स्थान प्राप्त कर पाती हैं, जिनसे हमारी प्रसन्नता जुड़ी होती है। प्रसन्नता की आकांक्षा वस्तुतः हमारे अस्तित्व की नैसर्गिक माँग है। यदि जीवन के हर क्षण में प्रसन्नता की निरंतरता बनी रहे तो यह आनंद का पर्याय बन जाती है और हमारे शास्त्रों में आनंद को परमात्मा का स्वरूप माना गया है।

प्रसन्नता को प्राप्त करने की संभावनाएँ व क्षमताएँ हम सभी में हैं, परंतु जीवन में इसका स्वाद किसी-किसी को ही प्राप्त हो पाता है। क्यों ? क्योंकि जिंदगी का रास्ता इतना सीधा-सरल और आसान नहीं होता, जितना कि हम समझ लेते हैं। जिस दुनिया में, जिस परिवेश में हम रहते हैं, जिन लोगों को हम जानते हैं, जिन संबंधों के साथ हम निभते-निभाते हैं, इन्हीं सब के बीच हमें अपनी प्रसन्नता तलाशनी होती है, लेकिन सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि जब हम अपने अतीत से लेकर आज तक के जीवन का मूल्यांकन करते हैं तो प्रसन्नता की राह बड़ी कठिन जान पड़ती है।

चाहते तो सभी हैं कि ढेर सारी प्रसन्नता बटोरें, हमेशा खुश रहें, किंतु ऐसा संभव कम ही हो पाता है। अतीत के गुजरे पलों की गिनती करते हैं तो पाते हैं कि जिंदगी में प्रसन्नता के पल बहुत कम और दुःख-कष्ट के पल ही ज्यादा रहे हैं। वर्तमान क्षणों में भी प्रसन्नता प्राप्त कर सकें, ऐसी अनुकूलता दिखाई नहीं देती है तो क्या प्रसन्नता की इच्छा यों ही भीतर दबी पड़ी रह जाएगी और हम इसकी आकांक्षा लिए सुख-दुःख की लहरों में डगमगाते जीवन को जीते रहेंगे ?

नहीं ! हममें से कोई भी अप्रसन्न जीवन जीने के लिए अभिशप्त नहीं है। मनुष्य के पास जो जीवन है, उसमें असीम संभावनाएँ सदैव होती हैं तथा इस जीवन को जीने के मार्ग भी अगणित होते हैं। बस, हरेक के लिए यह जिम्मेदारी और आवश्यकता है कि वह अपने जीवन के लिए उस मार्ग को खोज निकाले, जिस पर चलकर प्रसन्नता की प्राप्ति हो सके।

इस विश्वास को बहुत गहरे में स्थान दें कि इस दुनिया में हरेक के लिए प्रसन्नता का मार्ग होता है। यह अवश्य है कि इसकी तलाश हरेक को स्वयं करनी पड़ती है। सबके लिए अपना अलग-अलग और निजी मार्ग होता है प्रसन्नता का। इसे स्वयं ही खोजना होता है, कोई दूसरा इसे खोजकर नहीं दे सकता और न हम चाहकर ही दूसरों के लिए इसे खोज सकते हैं।

सर्वप्रथम हमें अपने भीतर झाँकना चाहिए और यह देखना चाहिए कि क्या हमारे अंतर्भावों के किसी कोने में प्रसन्नता की इच्छा-आकांक्षा हिलोरें ले रही हैं या नहीं ? स्वयं से पूछें कि क्या सच में हम प्रसन्नता प्राप्त करने की चाहत रखते हैं ? स्वयं को प्रसन्न देखना चाहते हैं ? यदि हाँ, तो फिर कहीं और अलग दुनिया में, भिन्न परिस्थितियों में नहीं, बल्कि जहाँ-जैसे हैं वहीं, इसी दुनिया की भीड़ में अपने हिस्से की प्रसन्नता हमें स्वयं ही तलाशनी पड़ेगी।

जो सचमुच तैयार हैं प्रसन्न होने के लिए, अपना स्वयं का रास्ता खोजने और उस पर चल पड़ने के लिए, तो

ऐसे लोगों के लिए हम यहाँ कुछ जीवन के अनमोल सूत्र प्रस्तुत कर रहे हैं, जिन्हें अपनाकर सभी अपनी-अपनी प्रसन्नता को खोज लेने में सुनिश्चित सफलता प्राप्त कर सकेंगे।

इन जीवन मंत्रों में पहला सूत्र है—इस बात में पूर्ण विश्वास रखना कि जिंदगी की सारी प्रसन्नता, संसार का समस्त सौंदर्य हमारे व्यक्तित्व में समाहित है। प्रसन्नता कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसे बाहर से लाया या पाया जा सके अथवा कीमत देकर खरीदा जा सके। यह जीवन की सबसे कीमती विभूति है, इनसान का सबसे उच्चतम और पवित्रतम गुण है और इसका स्थान बाहर नहीं, बल्कि हमारे भीतर ही, हमारे दृष्टिकोण में मौजूद है।

प्रसन्नता के मार्ग का दूसरा जीवन मंत्र है कि खाली कभी न रहें। अच्छा रहेगा कि कोई सार्थक लक्ष्य बनाकर जिंदगी में उसे पाने के लिए प्रयत्नशील रहा जाए। जितना बड़ा लक्ष्य प्राप्त कर पाएँगे, उतनी ही बड़ी उपलब्धि होगी और जितनी बड़ी उपलब्धि होगी, उतनी ही ज्यादा प्रसन्नता।

ध्यान रहे कि उपलब्धियों का प्रसन्नता से गहरा संबंध होता है। निकम्मेपन-निठल्लेपन से कभी भी प्रसन्नता प्राप्त नहीं हो सकती। कुछ-न-कुछ सार्थक, सकारात्मक अवश्य करते रहें। पूज्य गुरुदेव ने कहा है कि **'व्यस्त रहें, मस्त रहें**।' व्यस्त रहने वाले पुरुषार्थी जीवन में ही प्रसन्नता की बगिया लहराती है।

प्रसन्नता को पाने और सँभाले रखने का तीसरा जीवन सूत्र है—श्रेष्ठतम मूल्यों को, उच्चतम आदर्शों, महान व्यक्तित्व के विचारों-सिद्धांतों को ही सबसे बड़ा मित्र बनाया जाए। जीवन में बनने वाले हमारे मित्रों से तो हमें कभी धोखा मिल सकता है, पर इन मूल्यों से कभी छल-धोखा नहीं मिल सकता और सबसे महत्त्वपूर्ण यह कि जिंदगी के सफर में जब भी कहीं टूटने-बिखरने लगेंगे, हारने लगेंगे, तब इनसे बड़ा सहायक मित्र और दूसरा कोई नहीं होगा।

घने अंधकार में भी जीवन को सही रास्ता दिखाने की सामर्थ्य सिर्फ इन्हीं मूल्यों-आदर्शों में होती है। सारी दुनिया भी यदि हमारे विरुद्ध खड़ी हो जाए तब भी ये हमारा साथ नहीं छोड़ते हैं। हमारे अस्तित्व में प्रसन्नता को विकसित करने के लिए, पनपने के लिए जिस खाद-मिट्टी की आवश्यकता होती है, वह हमें इन्हीं जीवनमूल्यों और आदर्शों से प्राप्त होती है।

अगला जीवन सूत्र स्व-अनुशासन, संयम का है, जिसके द्वारा प्राप्त होने वाली प्रसन्नता को सहेजा-सँभाला जाता है। इस सूत्र को आत्मसात् करने के लिए स्वयं में यह समझना जरूरी है कि हमें जो कुछ भी करना है, जहाँ भी पहुँचना, जिस भी चीज की प्राप्ति करनी है, वह सब कुछ समय की मर्यादा से बँधा है। समय का महत्त्व जानने वाले, समय का संयम अपनाने वाले व्यक्ति ही प्रसन्नता की राह पर आगे बढ़ने में सफल हो पाते हैं। इसलिए सदा यह याद रखें कि समय के सार्थक उपयोग के लिए स्व-अनुशासन, संयम का आंतरिक अनुबंध ही कारगर उपाय है।

कहा जाता है कि जो समय को बरबाद करते हैं, समय एक दिन उन्हें ही नष्ट कर देता है। अत: जीवन में समय का संयम और प्रबंधन बहुत आवश्यक है। जीवनचर्या के कार्यों का कुछ इस तरह निर्धारण किया जाना चाहिए कि हमारे समय का अधिकतम भाग उद्देश्यपूर्ण कार्यों में लगे, इसके अतिरिक्त थोड़ा खाली समय बचे अथवा थोड़ा समय निकालकर प्रकृति का सान्निध्य अवश्य प्राप्त करें। नदी, पहाड़, बाग, बगीचों में हरियाली के बीच जाकर कुछ समय शांत मन से बैठने तथा प्राकृतिक जीवन की गतिविधियों का अवलोकन करने से अंतर्मन स्वत: ही ताजगी और प्रसन्नता से भर उठता है।

पाँचवाँ जीवन सूत्र है—स्वयं से प्रेम करना। जिस जिंदगी की प्रसन्नता के लिए हम लालायित हैं, उस जिंदगी का महत्त्व हमें पता होना चाहिए। स्वयं के प्रति स्वाभिमान और आत्मसम्माम की भावना के लिए स्वयं का महत्त्व समझना आवश्यक है और यह महत्त्व तभी प्रकट होता है, जब हम स्वयं से प्रेम करते हैं। स्वयं से प्रेम करने वाला आस-पास के परिवेश और लोगों से भी प्रेम और सामंजस्यपूर्ण व्यवहार रख पाता है।

इसके साथ ही एक सबसे बड़ी उपलब्धि स्वयं से प्रेम करने वालों को मिलती है, वह है—आत्मविश्वास। आत्मविश्वास का निर्माण हमारी रचनात्मकता और मौलिकता की क्षमताओं से मिलकर होता है, लेकिन अपने भीतर की रचनात्मक व मौलिक बातों को जानने-समझने का जो उपाय है, वह है—स्वयं के प्रति प्रेम।

इन उपर्युक्त जीवन सूत्रों को अपनाकर हम सभी अपनी जिंदगी के लिए प्रसन्नता का मार्ग खोजने में सफल हो सकते हैं। ❑

मानवीय प्रकृति की परिभाषा साहित्य सृजन
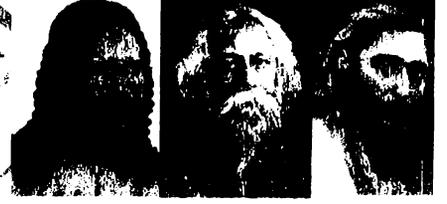
प्रकृति नित्य परिवर्तनशील है। सतत परिवर्तनशीलता प्रकृति का गुण है। इसके अंतस् में सर्वोत्तम एवं श्रेष्ठतम स्थिति की प्यास है, अतः प्रकृति प्रतिपल सक्रिय है। नित्य नूतन गढ़ने, जीर्ण-शीर्ण पुराने को नष्ट करने और नए को बारंबार सृजित करने की अपार शक्ति विद्यमान है। वह अनंत काल से सृजनरत है। अपने सृजन से सदा क्रियाशील जान पड़ती है प्रकृति ऐसी, जैसे एक शाश्वत सतत संशोधनीय कविता-सी। मनुष्य इसी प्रकृति का सृजन है।

प्रकृति ने मनुष्य को अपनी ही अंतर्काया से विकसित किया है, अतः प्रकृति के सारे गुण मनुष्य में भी समा गए हैं। प्रकृति अपने अंतस् में सदा क्रियाशील है, प्रतिपल नया रचती है। नई वनस्पति, नए फूल, नए शिशु, पशु-पक्षी, कीट-पतंगे, नए मेघ, नई वृष्टि और नई सृष्टि। मनुष्य में भी प्रकृति का सर्जक गुण है। मनुष्य प्राप्त से असंतुष्ट रहता है तथा अप्राप्त के प्रयास करता है। सृजनरत कवि, साहित्यकार या कलाकार प्रतिपल नवोन्मेष की प्रीति में रमे रहते हैं। वे जनसमूह से प्रभावित होते हैं, यथार्थ से सामग्री लेते हैं, भावार्थ को जोड़ते-घटाते हैं। तर्क-प्रतितर्क करते हैं। जनसमूह की जीवनशैली को प्रभावित भी करते हैं।

वर्तमान विश्व तनावपूर्ण है, लेकिन अपनी रुग्णताओं और बीमारियों से परिचित भी है। सामाजिक, आर्थिक और शासकीय बीमारियों की पहचान चिंतकों, दार्शनिकों और साहित्यकारों ने ही की। बीमारियाँ ढेर सारी होती हैं, लेकिन स्वास्थ्य एक ही होता है। स्वास्थ्य की दशा तक पहुँचाने वाले रास्ते अनेक होते हैं। जनसमूहों को स्वस्थ आत्मीय रिश्तों तक ले जाने की प्रक्रिया बहुत पुरानी है। कोई भी समाज स्वयं पूर्ण आदर्श नहीं होते।

साहित्यकार समाज में सत्य, शिव और सुंदर प्रवाह के लिए दृष्टि देते हैं। वे बोलते हैं, संवाद करते हैं। संवाद में वाद-विवाद भी होते हैं, यथास्थिति के विरुद्ध बोलने या लिखने वाले अपमानित भी होते हैं, लेकिन वे अपना काम करते रहते हैं। बीमारी या बुरे विचार संक्रामक होते हैं, वे तेजी से फैलते हैं, लेकिन बीमारी की ही तरह स्वास्थ्य भी संक्रामक होता है और सद्विचार भी। जनतंत्र का विचार ऐसे ही सद्विचारों का प्रतिफल है। आज के भारत का शुभतत्त्व हमारे पूर्वजों और सर्जकों के सचेत कर्मों का ही प्रसाद है। जनतंत्र की नींव दुनिया में सबसे पहले वैदिक कवियों ने ही डाली थी। ऋग्वेद के कवि ऋषि भी थे।

जनतंत्र अप्रतिम जीवनशैली है। असहमति का आदर और समन्वय वैदिक कवियों ने ही प्रारंभ किया। ब्रिटिश संसद को संसदीय जनतंत्र की मातृसंस्था बताने वाले भी विद्वान कम नहीं हैं, लेकिन सत्य यह है कि ब्रिटिश जनतंत्र राजतंत्र की प्रतिक्रिया से अस्तित्व में आया है और धीरे-धीरे उसका विकास हुआ। साधुवाद है उनको, जो कठोर विश्वासी अपने धर्मपंथ के बावजूद संसारी और ईश्वरीय तत्त्वों को अलग करने में प्रायः सफल रहे। भारत को संसदीय जनतंत्र अंगीकृत करने में कोई कठिनाई नहीं हुई। यहाँ के राष्ट्र में संगठित चर्च जैसी कोई शक्तिशाली संस्था नहीं थी। यहाँ सबकी अपनी निजी आस्था और विश्वास के लोकतंत्री वातावरण का प्रभाव था।

वैदिक कवियों ने बहुत सारे देवताओं की स्तुतियाँ कीं। इन कवियों ने भारतीय देवतंत्र में भी श्रेष्ठतम लोकतंत्र फैलाया। इसके पश्चात भी बहुदेववाद नहीं आया। सत्य एक, देवरूप और देवनाम अनेक। ऋग्वेद के कवि ऋषि की घोषणा भी यही थी—सत्य एक है, विद्वान उसे इंद्र या अग्नि अनेक नामों से पुकारते हैं। सत्य, शिव और सुंदर भारतीय मन के तीन स्वप्न हैं। दर्शन व विज्ञान सत्य का उद्घाटन करते हैं। समाजसुधारक लोक-मंगल के लिए काम करते हैं। साहित्यकार और संस्कृतिकर्मी सत्य व शिव को सुंदरम् तक ले जाते हैं।

भारत का लोकतंत्र जन से देवों तक विस्तृत था और है। इसका श्रेय प्राचीन भारतीय कवियों, ऋषियों को ही दिया जाना चाहिए। देवता होते हैं या नहीं होते ? यह मतांतर हो सकता है। भारतीय चिंतन में कवियों-ऋषियों ने स्पष्ट

किया कि परमात्मा एक है, परंतु उसके रूप भिन्न हैं। देवताओं में भी एक मत नहीं था। कठोपनिषद् के ऋषि कवि ने लिखा है कि मृत्यु के बाद जीवन की पूर्ण समाप्ति या सतत प्रवाह पर देवताओं में मतभेद था। कठोपनिषद् के मुख्य पात्र, नचिकेता को यम ने बताया था कि यह प्रश्न अनिर्णीत है, देवों में भी इस प्रश्न पर बहस चलती है।

ऋग्वेद के बाद के कवियों-साहित्यकारों ने रामायण और महाभारत जैसे आख्यान देकर राष्ट्रजीवन की तमाम मान्यताओं को उघाड़ा और सामाजिक परिवर्तन की गति को आगे बढ़ाया था। भारतीय राष्ट्रभाव की स्थापना का श्रेय भी ऋग्वेद, अथर्ववेद के कवियों को दिया जाना चाहिए। क्या यह आश्चर्यजनक तथ्य नहीं है कि भारतीय संस्कृति, दर्शन और विज्ञान का ज्ञान सुगठित कविता के रूप में ही उपलब्ध है ? भारतीय जनतंत्र के पुष्ट होने के कारण ही यहाँ बाइबिल या कुरान जैसा कोई एकमात्र पंथ, ग्रंथ या धर्मग्रंथ नहीं है। यहाँ का समूचा दर्शन और ज्ञान साहित्य ही है। इसलिए जनतंत्र की स्थापना, विकास और संवर्द्धन का श्रेय कवियों, साहित्यकारों को ही दिया जाना चाहिए।

विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता भारत के संविधान 1949 में मौलिक अधिकार बनी, लेकिन प्राचीन भारत में भी यह एक उच्चतर जीवनमूल्य थी। प्राचीन यूनानी दर्शन के इतिहास में विचार अभिव्यक्ति को लेकर सुकरात को मृत्युदंड मिला। भारत में नास्तिक दर्शन भी पनपा। चार्वाक समूहों ने भौतिकवादी लोकायत दर्शन चलाया। साहित्यकारों ने भारत की लोकतंत्री परंपरा का लगातार संवर्द्धन किया। भारत के कवि, साहित्यकार नवसृजन में लगे रहे। यूरोप के मध्यकालीन अंधकार को इटली के दांते जैसे कवियों ने प्रकाश से भरा। यूरोपीय पुनर्जागरण में कवियों, सर्जकों की भूमिका थी। भारत में साहित्य सृजन की निर्बाध धारा चली। इसलिए जंबूद्वीप भरतखंड के सामाजिक इतिहास और जनतंत्र को यूरोप के मध्यकाल से अलग करके देखा जाना चाहिए।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में राष्ट्रवादी चेतना का ज्वर फैलाने में साहित्यकारों की प्रमुख भूमिका थी। स्वाधीनता संग्राम के बाद स्वतंत्र भारत में भी साहित्यकारों ने अपनी श्रेयस्कर भूमिका का सम्यक निर्वाह किया। यहाँ के साहित्यकारों ने बहुत कुछ लिखा। उनके प्रभाव को कम करके नहीं आँका जा सकता।

भारतेंदु कवि और प्रख्यात साहित्यकार थे। उन्होंने फरवरी 1874 की कविवचन सुधा में आमजनों को याद दिलाया कि अँगरेज व्यापारी माल भेजते हैं। बढ़ई आदि छोटे व्यापारियों को काम मिलना कठिन हो गया। घरों की खिड़कियाँ और दरवाजे आदि इंग्लैंड से बनकर आते हैं। भारतेंदु अँगरेजी राज के विरुद्ध लोकजागरण में गतिशील थे। रवींद्रनाथ टैगोर ने बंगाल को प्रभावित किया और समूचे भारत के साथ विश्व को भी। तमिल कवि सुब्रह्मण्यम भारती (जन्म 1882) ने वंदेमातरम् का उद्घोष किया। उनकी काव्य रचनाएँ अँगरेजी राज को सीधी चुनौती थीं। 15वीं और 16वीं शताब्दी के हिंदी साहित्यकारों की रचनाएँ सामाजिक पुनर्गठन की प्रेरक हैं।

तुलसीदास, कबीर और सूरदास के साथ ही मीरा के पद सब ओर गाए जाते हैं। आधुनिककाल के कवियों में सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के सृजन में लोक और समाज के साथ दर्शन भी है। निराला अद्भुत थे। समाज की दिशा और दशा बदलने वाले साहित्यकारों की नामावली बड़ी है। सभी साहित्यकारों ने देश के सांस्कृतिक प्रवाह को गतिशील बनाया। साहित्यकारों के सृजन ने भारतीय राष्ट्रभाव को समाज के अंतर्मन की विषयवस्तु बनाया। कथित वर्तमान आधुनिकता के परिवेश में भी सृजनधर्म जारी है। इस परिवर्तनशील प्रक्रिया में भी मानवीय प्रकृति की परिभाषा के रूप में साहित्य सृजन क्रियाशील है। ❑

सत्यस्य वचनं साधु न सत्याद्विद्यते परम्।
सत्येन विधृतं सर्वम् सर्वम् सत्ये प्रतिष्ठितम्॥

अर्थात सत्य बोलना श्रेष्ठ है, क्योंकि सत्य से बढ़कर इस धराधाम में कुछ भी श्रेष्ठ नहीं है। इस सृष्टि में सब कुछ सत्य से ही धारण किया गया है, सत्य में ही सब कुछ प्रतिष्ठित है और सभी चर-अचर प्राणियों की प्रतिष्ठा का कारण भी सत्य ही है।

'युद्ध की विनाशलीला एवं शांति-समाधान

इतिहास के पन्नों को पलटकर देखें, तो हर युग में मानव जाति किसी-न-किसी मुद्दे को लेकर आपस में लड़ती रही है। प्रागैतिहासिक काल में भोजन व निवास की आधारभूत आवश्यकताओं के लिए युद्ध होते थे। इसके बाद सभ्यता के विकास के साथ छोटे-बड़े समुदायों के बीच कबीलाई युद्धों का चलन चला। तत्पश्चात राजशासन के दौर में विभिन्न शासकों व सम्राटों के बीच सत्ता के लिए युद्ध संघर्ष देखने को मिले। धर्म के नाम पर युद्ध के लंबे दौर भी विश्व के कोनों में होते रहे हैं। लोकतंत्र के दौर में भी विभिन्न देशों के बीच विचारधाराओं के लिए युद्ध हुए। साम्राज्यवाद के दौर में वैश्विक स्तर पर आर्थिक, राजनीतिक एवं संसाधनों के प्रभुत्व के लिए युद्ध का चलन शुरू हुआ। इसके अंतर्गत बीसवीं सदी में दो विश्वयुद्धों का मानवीय इतिहास साक्षी रहा है, जिसमें हुआ विनाश युद्ध की विभीषिका को लेकर रोंगटे खड़े करता है। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद शीतयुद्ध के दौर में भी कितने सारे युद्ध हो चुके हैं, जिनके थमने का सिलसिला आज तक नहीं दिखता।

युद्ध के कारणों में आर्थिक कारक प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में निर्णायक भूमिका निभाता रहा है। पौराणिक काल में धर्म-अधर्म, नीति-अनीति आदि युद्ध के प्रमुख कारक रहे हैं; जबकि ऐतिहासिक काल में साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षाएँ, स्वाधीनता संघर्ष, लोकतंत्र या समतावादी, न्यायवादी व्यवस्था की स्थापना, सैन्य एकाधिकारवाद, भूमंडलीय वर्चस्ववाद, नवउपनिवेशवाद जैसे कारक युद्ध के प्रमुख कारण रहे हैं।

किसी देश के राष्ट्रीय हितों की पूर्ति के लिए युद्ध अंतिम उपाय माना जाता है। जब राजनीतिक समस्याओं के समाधान के कूटनीतिक प्रयास या शांतिपूर्ण साधन निष्फल हो जाते हैं, तो युद्ध के मार्ग का अवलंबन लिया जाता है। भारत के प्राचीन नीतिकारों के अनुसार भी जब राजनयिक समाधान में साम, दाम, भेद जैसे उपाय निष्फल हो जाते हैं, तो इनके बाद दंड की बात कही गई है, जो बड़े स्तर पर युद्ध का रूप ले लेते हैं।

निस्संदेह युद्ध समूह या राज्य के हाथों का वह अंतिम हथियार होता है, जो शेष सभी विकल्पों के समाप्त होने के बाद प्रयोग किया जाता है। चीनी दार्शनिक ने तो यहाँ तक कहा है कि सबसे बड़ा युद्ध वह होता है, जो बिना किसी अस्त्र-शस्त्र के प्रयोग के विरोधी को परास्त कर देता है व अपना प्रयोजन सिद्ध कर लेता है। इसीलिए शस्त्रयुक्त युद्ध से पूर्व कूटनीतिक युद्ध का चलन रहा है। रामायण एवं महाभारत के युद्ध तक में इसका प्रयोग किया गया था। अंगद व हनुमान जी भगवान श्रीराम के संदेशवाहक बनकर रावण की सभा में शांतिपूर्ण समाधान लेकर गए थे, लेकिन इन प्रयासों के विफल होने पर रावण के साथ युद्ध हुआ था। इसी प्रकार भगवान श्रीकृष्ण स्वयं शांतिदूत बनकर कौरवों की सभा में गए थे, लेकिन इसके विफल होने पर फिर महाभारत का युद्ध हुआ था।

मालूम हो कि रामायण का युद्ध 84 दिन तक चला था, जिसका अंत रावण व उसके शासन के अंत के साथ हुआ था। महाभारत का युद्ध 18 दिन चला था, जिसमें अनुमान है कि 40 लाख योद्धा मारे गए थे। इसका अंत कौरवों की पराजय व पांडवों की विजय के साथ हुआ था। हालाँकि इसमें दोनों पक्षों को भारी क्षति उठानी पड़ी थी। इसके अतिरिक्त पौराणिक काल में इंद्र-वृत्तासुर, हैहय-परशुराम, दसराज युद्ध जैसे अन्य युद्धों का वर्णन मिलता है।

वैश्विक संदर्भ में देखें तो मानव जाति का इतिहास युद्धों का इतिहास रहा है। प्राचीन यूनान के 375 वर्षों के इतिहास में 235 वर्ष युद्ध में बीते। इनमें वर्ष भर चलने वाले युद्धों की संख्या लगभग 210 थी। ये मुख्यतया पर्शियन शासकों व यूनानियों के बीच चले। रोमन शासकों के 876 वर्षों के इतिहास में 416 वर्षों तक युद्ध हुए। इनमें भी 362 ऐसे युद्ध थे, जो वर्ष भर चले। रोमन शासक जूलियस सीजर के नेतृत्व में कई युद्ध अभियान चले। इसी कड़ी में विश्वविजय के अभियान पर निकले सम्राट सिकंदर के युद्ध जुड़े।

भारत में अशोक महान का कलिंग युद्ध उल्लेखनीय है, जिसमें एक लाख से अधिक सैनिक मारे गए थे और कई लाख घायल हुए थे। इसमें हुई हिंसा को देखकर सम्राट

अशोक का हृदय परिवर्तन हुआ और अंतत: वे बौद्ध धर्म को अपनाकर, शांति व करुणा के संदेशवाहक बने।

इसके बाद भी भारत में इतिहास के विभिन्न कालखंडों में कितने सारे युद्ध हुए, जिनमें मुगलों एवं अँगरेजों के शासनकाल में लोमहर्षक युद्धों का वर्णन आता है, जिसमें करोड़ों लोग व सैनिक हताहत हुए। आधुनिक युद्ध में सबसे बड़े युद्धों में 20वीं सदी के विश्वयुद्ध आते हैं; जिनमें मृतकों और घायलों के आँकड़े इसकी भयावहता को व्यक्त करते हैं, लेकिन मनुष्य, विशेषकर शासक वर्ग इनसे शायद ही सबक लेते रहे हों और वे अपनी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओं एवं स्वार्थ के लिए मानवता को इसके दावानल में यदा-कदा झोंकते रहे हैं।

प्रथम विश्वयुद्ध सन् 1914 से लेकर सन् 1918 तक मुख्यतया यूरोप के 30 देशों के मध्य लड़ा गया। इसमें एक ओर 17 मित्र देश थे और दूसरी ओर केंद्रीय देश थे। इसकी शुरुआत ऑस्ट्रिया के राजकुमार की हत्या के साथ हुई थी व इसका अंत वारसो, पोलेंड की संधि के साथ हुआ, जिसमें दूसरे विश्वयुद्ध की नींव पड़ गई थी। प्रथम विश्वयुद्ध में लगभग 2 करोड़ लोग मारे गए थे।

द्वितीय विश्वयुद्ध 1939 से 1945 तक 6 वर्ष लड़ा गया, इसमें लगभग 70 देश शामिल थे, जिसमें एक ओर थे धुरी राष्ट्र तथा दूसरी ओर थे मित्र राष्ट्र। इसकी शुरुआत पोलैंड पर जर्मनी के आक्रमण के साथ हुई और इसका अंत हिटलर की पराजय व जर्मनी के पतन के साथ हुआ। इसमें 8 करोड़ लोग मारे गए थे। हिटलर द्वारा लाखों यहूदियों के नरसंहार की लोमहर्षक घटनाओं का भी यह विश्वयुद्ध साक्षी रहा।

जापान पर अमेरिका के परमाणु बम गिराने के साथ यह द्वितीय विश्वयुद्ध समाप्त हुआ। हिरोशिमा में परमाणु बम के प्रयोग से तत्काल 1 लाख लोग और नागासाकी में 40 हजार लोग इसकी बलि चढ़ गए। इसके साथ लाखों लोग घायल व अपंग भी हुए, जिसका दंश वहाँ के नागरिक पीढ़ियों तक झेलने के लिए अभिशप्त हुए।

विश्व में शांति के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना हुई और इसके बाद विश्व में नाटो और इस्टर्न ब्लॉक के रूप में दो सैन्य संगठन उभरे और विश्व दो ध्रुवों में बँटा, जिनमें एक की अगुआई संयुक्त राज्य अमेरिका ने की है तो दूसरे की सोवियत संघ ने।

इसके बाद शीतयुद्ध का दौर शुरू हुआ, जिसमें प्रत्यक्षत: कोई बड़ा युद्ध तो नहीं हुआ, लेकिन छोटे-बड़े युद्ध होते रहे। सन् 1991 में सोवियत संघ के विघटन के साथ शीतयुद्ध का दौर समाप्त हुआ और अमेरिका की अगुआई में एकध्रुवीय व्यवस्था शेष रह गई। इसके बावजूद प्रतिवर्ष विश्व में 30 से अधिक सशस्त्र संघर्ष होते रहे, जिनमें अब तक 1 करोड़ से अधिक लोग अपनी जान गँवा चुके हैं।

युद्धों की शृंखला की नवीनतम कड़ी **यूक्रेन-रूस संघर्ष** है, जिसमें परोक्ष रूप में अमेरिका और नाटो की भूमिका को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। इसके चलते इस संघर्ष में विश्वयुद्ध तक की आहट सुनाई दे रही है। परमाणु शस्त्रों से संपन्न दोनों पक्षों के कारण परमाणु युद्ध का खतरा बना हुआ है, जिसके परिणामों की कल्पना भर से सिहरन पैदा होती है।

पूरे विश्व में इस समय कतिपय शक्तिशाली देशों के पास हजारों परमाणु शस्त्र उपलब्ध हैं। यदि दुर्घटनावश भी इनका प्रयोग हुआ तो इस धरती पर मानवीय अस्तित्व खतरे में पड़ सकता है। इस पृष्ठभूमि में आइंस्टाइन ने कहा था कि तीसरा विश्वयुद्ध कैसे लड़ा जाएगा, कह नहीं सकते, हाँ इतना सुनिश्चित है कि चौथा युद्ध लाठी व पत्थरों से लड़ा जाएगा अर्थात सर्वनाशी युद्ध के बाद इस धरती पर कुछ शेष नहीं रह जाएगा।

महान इतिहासकार अर्नोल्ड टायनबी के अनुसार, यह निर्विवाद सत्य है कि पिछले पाँच हजार वर्षों के दौरान युद्ध मानव जाति के प्रमुख कार्यकलापों में से एक रहा है। युद्ध में जितना व्यय हुआ है वह शांति, स्वास्थ्य, शिक्षा, शोध, सृजन की कीमत पर हुआ है। देखकर ऐसा लगता है कि युद्ध सभ्यता के जन्मजात रोगों में से एक है। फिर एक युद्ध आगे चलकर और युद्धों को जन्म देता है। इतिहास गवाही देता है कि युद्ध द्वारा विवादों का संतोषजनक व स्थायी समाधान शायद ही कभी प्राप्त हुआ हो। यदि कुछ समाधान हुए भी हों, तो इसकी भारी कीमत पीढ़ियों तक चुकानी पड़ी है, जिससे उबरने में बहुत समय लगा है।

यह सब देखते हुए समझदारी इसी में है कि हर स्तर पर मतभेद के कारणों का मिल-बैठकर शांतिपूर्ण समाधान हो। झूठे अहंकार, वर्चस्ववादी व अड़ियल रवैये को ताक पर रखकर औचित्य का सम्मान हो। व्यापक जनहित में निर्णय लेते हुए युद्ध की विभीषिका को टाला जा सकता है।

इसी के साथ हर नागरिक का कर्त्तव्य बनता है कि देश को स्वावलंबी व सशक्त बनाने में अपना योगदान दे; क्योंकि वैश्विक परिस्थितियों को देखते हुए आत्मनिर्भर एवं हर रूप में सशक्त सुसंस्कृत राष्ट्र ही युद्ध का ठोस प्रतिकार एवं शांति का स्थायी आधार हो सकता है।

विश्व में शांति स्थापित करने की संकल्पना को साकार करने की पहल के रूप में देव संस्कृति विश्वविद्यालय में विगत दिनों भारत के माननीय उपराष्ट्रपति श्री एम० वेंकैया नायडू द्वारा देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर में दक्षिण एशियाई शांति एवं सुलह संस्थान (साइपर) का शुभारंभ किया गया, जिसका उद्देश्य परमपूज्य गुरुदेव द्वारा प्रदत्त सूत्र कि भारत विश्वशांति का केंद्र बनेगा, उसे साकार करना है।

इसके उद्घाटन के सुअवसर पर माननीय उपराष्ट्रपति जी ने कहा कि यह संस्थान क्षेत्रीय स्थिरता को लाने एवं आपसी सकारात्मक व्यवहार को विकसित करने का केंद्र बनेगा। इस अंतरराष्ट्रीय केंद्र की स्थापना में निहित उद्देश्यों एवं उन्हें पूर्ण करने की योजना का अवलोकन करने के पश्चात उन्होंने इसे एक मील का पत्थर घोषित किया। ❑

पुन्नाग अपराध का पर्याय बन चुका था। प्राणियों को पीड़ित देखना ही मानो पुन्नाग का अभीष्ट था। उसे अपनी मातृविहीन पुत्री विपाशा से अत्यधिक स्नेह था। कुछ बड़ी होने पर विपाशा को अपने पिता के इन कुकृत्यों का पता लगा। एक दिन उसने अपने प्रिय मृगशावक को चोट के दरद से तड़पते देखा तो उसे एहसास हुआ कि उसके पिता ने अब तक न जाने कितनों को ऐसी अनगिनत पीड़ाओं के गह्वर में झोंका होगा।

पीड़ा को और भी गहराई से अनुभूत करने के लिए उसने पत्थर से अपने पैर को चोटिल कर लिया, हड्डी टूटते ही वह कराहने लगी। पुत्री के कष्ट की बात पता चलते ही पुन्नाग तुरंत आया और चीत्कारते हुए कहने लगा— "पुत्री! यह कैसे हो गया ?" विपाशा ने उत्तर दिया—"पिताश्री! मैं देखना चाहती थी कि पीड़ा कैसी होती है, सुना है आप भी लोगों को कष्ट, पीड़ा दिया करते हैं।" इतना कहकर वह मौन हो गई और उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। आज पुन्नाग को दुःख, पीड़ा का एहसास हुआ। उसने उसी दिन से लोगों को सताना बंद कर दिया और शेष जीवन पीड़ितों की पीड़ा को दूर करने में लगाना शुरू कर दिया।

जैव-विविधता का संरक्षण

जैव-विविधता संरक्षण का आशय जैविक संसाधनों के प्रबंधन से है, जिससे उनके व्यापक उपयोग के साथ-साथ उनकी गुणवत्ता भी बनी रहे। चूँकि जैव-विविधता मानव सभ्यता के विकास का स्तंभ है, इसलिए इसका संरक्षण अति आवश्यक है। जैव-विविधता हमारे भोजन, वस्त्र, ईंधन आदि की आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

जैव-विविधता पारिस्थितिक संतुलन को बनाए रखने में सहायक होती है। इसके अतिरिक्त यह प्राकृतिक आपदाओं जैसे बाढ़, सूखा आदि से राहत प्रदान करती है। वास्तव में जैव-विविधता प्रकृति की स्वाभाविक संपत्ति है और इसका क्षय एक प्रकार से प्रकृति का क्षय है। अत: प्रकृति को नष्ट होने से बचाने के लिए जैव-विविधता को संरक्षण प्रदान करना समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

मेस तथा स्टुअर्ट एवं अंतरराष्ट्रीय प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधन संघ (आई. यू. सी. एन. 1994 डी) ने वनस्पतियों एवं जंतुओं की कम होती प्रजातियों को संरक्षण हेतु निम्नलिखित श्रेणियों में बाँटा है—

असहाय प्रजाति—वे प्रजातियाँ जो अगर वर्तमान कारक का प्रकोप जारी रहा तो संकटग्रस्त प्रजातियाँ बन सकती हैं। भारत में भालू (स्लॉथ बीयर) इसका उदाहरण है।

दुर्लभ प्रजाति—ये वे प्रजातियाँ होती हैं, जिनकी संख्या कम होने के कारण उनकी विलुप्ति का खतरा बना रहता है, भारत में शेर (एशियाटिक लायन) इसका उदाहरण है।

अनिश्चित प्रजाति—वे प्रजातियाँ जिनकी विलुप्ति का खतरा है लेकिन कारण अज्ञात हैं। मेक्सिकन प्रेरी कुत्ता इसका उदाहरण है।

संकटग्रस्त प्रजाति—वे प्रजातियाँ जिनकी विलुप्ति का निकट भविष्य में खतरा है। इन प्रजातियों की जनसंख्या गंभीर स्तर तक घट चुकी है तथा इनके प्राकृतिक आवास भी बुरी तरह घट चुके हैं। गंगा डॉल्फिन तथा नीली ह्वेल इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

गंभीर संकटग्रस्त प्रजाति—वे प्रजातियाँ, जो निकट भविष्य में जंगली अवस्था में विलुप्त होने के खतरे का सामना कर रही हों। भारत में सोहन चिड़िया (ग्रेट इंडियन बस्टर्ड) तथा गंगा शार्क इसके उदाहरण हैं।

विलुप्त प्रजाति—वे प्रजातियाँ, जिनका अस्तित्व पृथ्वी से समाप्त हो चुका है। डाइनासोर तथा डोडो इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

अपर्याप्त रूप से ज्ञात प्रजाति—वे प्रजातियाँ, जो संभवत: किसी एक संरक्षण श्रेणी से संबद्ध होती हैं, लेकिन अपर्याप्त जानकारी के अभाव में उन्हें किसी विशेष प्रजातीय श्रेणी में रखा गया है।

जंगली अवस्था में विलुप्त प्रजाति—वे प्रजातियाँ, जो वर्तमान में खेती अथवा कैद में होने के कारण ही जीवित हैं। ये प्रजातियाँ अपने पूर्व के प्राकृतिक आवास से विलुप्त हो चुकी हैं।

संरक्षण आधारित प्रजाति—ये वे प्रजातियाँ होती हैं, जो आवास-आधारित संरक्षण कार्यक्रम पर निर्भर होती हैं। अगर संरक्षण कार्यक्रम रुक जाता है तो ये प्रजातियाँ पाँच वर्ष के भीतर किसी भी जोखिमग्रस्त श्रेणी के अंतर्गत आ सकती हैं।

लगभग जोखिमग्रस्त प्रजाति—ये वे प्रजातियाँ हैं, जो दुर्लभ श्रेणी में पहुँचने के करीब होती हैं।

कम महत्त्व वाली प्रजाति—वे प्रजातियाँ, जो न तो गंभीर संकटग्रस्त, संकटग्रस्त अथवा असहाय होती हैं न ही वे संरक्षण आधारित लगभग संकटग्रस्त के योग्य होती हैं।

आँकड़ों की अभाव वाली प्रजाति—वे प्रजातियाँ जिनके विषय में पर्याप्त आँकड़ों के अभाव के कारण इनको किसी श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है।

अमूल्यांकित प्रजाति—वे प्रजातियाँ, जिनका आकलन किसी भी मापदंड के अनुसार नहीं किया गया है।

विश्व संरक्षण रणनीति ने जैव-विविधता संरक्षण के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए हैं—

उन प्रजातियों के संरक्षण का प्रयास होना चाहिए, जो कि संकटग्रस्त हैं। विलुप्ति पर रोक के लिए उचित योजना तथा प्रबंधन की आवश्यकता भी ध्यान में रखनी चाहिए। खाद्य फसलों, चारों, पौधों, मवेशियों, जानवरों तथा उनके जंगली रिश्तेदारों को संरक्षित किया जाना चाहिए। प्रत्येक देश की वन्य प्रजातियों के आवास को चिह्नित कर उनकी सुरक्षा को सुनिश्चित करना चाहिए।

उन आवासों को सुरक्षा प्रदान करनी चाहिए, जहाँ प्रजातियाँ भोजन, प्रजनन तथा बच्चों का पालन-पोषण करती हैं। जंगली पौधों तथा जंतुओं के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर नियंत्रण होना चाहिए। वनस्पतियों एवं जंतुओं की प्रजातियों तथा उनके आवास को बचाने के लिए समयबद्ध कार्यक्रम को लागू करने की आवश्यकता है, जिससे जैव-विविधता संरक्षण को बढ़ावा मिल सके। अतः संरक्षण की कार्ययोजना आवश्यक रूप से निम्नलिखित बिंदुओं में होनी चाहिए—

(1) द्वीपों सहित देश के विभिन्न क्षेत्रों में पाए जाने वाले जैविक संसाधनों को सूचीबद्ध करना।

(2) संरक्षित क्षेत्र के जाल जैसे राष्ट्रीय पार्क, जैवमंडल रिजर्व, अभयारण्य, जीन कोश आदि के माध्यम से जैव-विविधता का संरक्षण।

(3) क्षरित आवास का प्राकृतिक अवस्था में पुनरुत्थान।

(4) प्रजाति को किसी दूसरी जगह उगाकर उसे मानव दबाव से बचाना।

(5) संरक्षित क्षेत्र बनने से विस्थापित आदिवासियों का पुनर्वास।

(6) जैव-प्रौद्योगिकी तथा ऊतक संवर्द्धन की आधुनिक तकनीकों से लुप्तप्राय प्रजातियों का गुणन।

(7) देसी आनुवंशिक विविधता संरक्षण हेतु घरेलू पौधों तथा जंतुओं की प्रजातियों की सुरक्षा।

(8) जोखिमग्रस्त प्रजातियों का पुनरुत्थान।

(9) बिना विस्तृत जाँच के विदेशी मूल के पौधों के प्रवेश पर रोक।

(10) एक ही प्रकार की प्रजाति का विस्तृत क्षेत्र पर रोपण को हतोत्साहन।

(11) उचित कानून के जरिए प्रजातियों के अतिशोषण पर लगाम।

(12) प्रजाति व्यापार संविदा के अंतर्गत अतिशोषण पर नियंत्रण।

(13) आनुवंशिक संसाधनों के संपोषित उपयोग तथा उचित कानून के द्वारा सुरक्षा।

(14) संरक्षण में सहायक पारंपरिक ज्ञान तथा कौशल को प्रोत्साहन।

जैव-विविधता संरक्षण की विधियाँ—जैव-विविधता संरक्षण की मुख्यतः दो विधियाँ होती हैं, जिन्हें यथास्थल संरक्षण तथा बहिःस्थल संरक्षण के नाम से जाना जाता है। जो कि निम्नवत हैं—

यथास्थल संरक्षण—इस विधि के अंतर्गत प्रजाति का संरक्षण उसके प्राकृतिक आवास तथा मानव द्वारा निर्मित पारितंत्र में किया जाता है, जहाँ वह पाई जाती है। इस विधि में विभिन्न श्रेणियों के सुरक्षित क्षेत्रों का प्रबंधन विभिन्न उद्देश्यों से समाज के लाभ हेतु किया जाता है। सुरक्षित क्षेत्रों में राष्ट्रीय पार्क, अभयारण्य तथा जैवमंडल रिजर्व आदि प्रमुख हैं।

राष्ट्रीय पार्क की स्थापना का मुख्य उद्देश्य वन्य-जीवन को संरक्षण प्रदान करना होता है, जबकि अभयारण्य की स्थापना का उद्देश्य किसी विशेष वन्य-जीव की प्रजाति को संरक्षण प्रदान करना होता है। जैवमंडल रिजर्व बहुउपयोगी संरक्षित क्षेत्र होता है, जिसमें आनुवंशिक विविधता को उसके प्रतिनिधि पारितंत्र में वन्य-जीवन जनसंख्या, आदिवासियों की पारंपरिक जीवनशैली आदि को सुरक्षा प्रदान कर संरक्षित किया जाता है।

भारत ने यथास्थल संरक्षण में उल्लेखनीय कार्य किया है। देश में कुल 89 राष्ट्रीय पार्क हैं, जो 41 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल पर फैले हैं; जबकि देश में कुल 500 अभयारण्य हैं, जो कि लगभग 120 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल पर फैले हैं। देश में कुल 17 जैवमण्डल रिजर्व हैं। नीलगिरि जैवमंडल रिजर्व भारत का पहला जैवमंडल रिजर्व था, जिसकी स्थापना सन् 1986 में की गई थी। यूनेस्को ने भारत के सुंदरवन रिजर्व, मन्नार की खाड़ी रिजर्व तथा अगस्थमलय जैवमंडल रिजर्व को विश्व जैवमंडल रिजर्व का दरजा दिया है।

बहिःस्थल संरक्षण—यह संरक्षण की वह विधि है, जिसमें प्रजातियों का संरक्षण उनके प्राकृतिक आवास के

बाहर जैसे वानस्पतिक वाटिकाओं, जंतुशालाओं, आनुवंशिक संसाधन केंद्रों, संवर्द्धन संग्रह आदि स्थानों पर किया जाता है।

इस विधि द्वारा पौधों का संरक्षण सुगमता से किया जा सकता है। इस विधि में बीज बैंक, वानस्पतिक वाटिका, ऊतक संवर्द्धन तथा आनुवंशिक अभियांत्रिकी की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। जहाँ तक फसल आनुवंशिक संसाधन का संबंध है, भारत ने बहि:स्थल संरक्षण में भी प्रशंसनीय कार्य किया है। जीन कोश में 34,000 से ज्यादा धान्य फसलों (गेहूँ, धान, मक्का, जौ एवं जई) तथा 22,000 दलहनी फसलों का संग्रह किया गया है, जिन्हें भारत में उगाया जाता है। इसी तरह का कार्य पशुपालन तथा मत्स्य पालन के भी क्षेत्र में किया गया है।

मानव सभ्यता के विकास की धुरी जैव-विविधता मुख्यत: आवास विनाश, आवास विखंडन, पर्यावरण प्रदूषण, विदेशी मूल के वनस्पतियों के आक्रमण, अतिशोषण, वन्य-जीवों का शिकार, वनविनाश, अति-चराई, बीमारी आदि के कारण खतरे में है। अत: पारिस्थितिक संतुलन, मनुष्य की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति एवं प्राकृतिक आपदाओं (बाढ़, सूखा, भू-स्खलन आदि) से मुक्ति के लिए जैव-विविधता का संरक्षण करना आज के समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है। ❑

वैशाली महानगर राज्य महोत्सव मनाने में संलग्न था कि तभी पहले से घात लगाए हुए शत्रुओं ने नगर पर आक्रमण बोल दिया। युद्ध में सेना हार रही थी और शत्रु-सेना प्रजाजनों पर अत्याचार करने लगी थी। विवश नगरनायक महायायन का हृदय यह देखकर चीत्कार करने लगा था। कुछ सोचकर वे शत्रु सेनाध्यक्ष से मिलने चल पड़े और उनसे इस अत्याचार को रोकने का अनुरोध किया। शत्रु सेनानायक ने उसके समक्ष यह शर्त रखी कि तुम जितनी देर सामने बह रही नदी में डूबे रहोगे, हमारी सेना लूट-पाट व हिंसा बंद रखेगी। शर्त स्वीकार कर अविलंब महायायन नदी में कूद पड़ा।

वचनबद्ध शत्रु सेनानायक ने सेना को तब तक के लिए लूट-पाट व संहार बंद रखने को कहा, जब तक कि नगरनायक का सिर पानी के बाहर न दिखाई पड़े। बहुत समय बीत गया, परंतु महायायन बाहर नहीं आए और विशाल शत्रु सेना सेनानायक के नेतृत्व में महायायन के बाहर निकलने की प्रतीक्षा बेचैनी से करने लग गई थी। सेनानायक को आश्चर्य हुआ। उसने गोताखोरों को नगरनायक का पता लगाने को कहा।

खोज-बीन करने पर नगरनायक का मृत शरीर चट्टान से लिपटा पाया गया। उसने दोनों हाथों से चट्टान को मजबूती से पकड़ रखा था और मरने के बाद हाथ नहीं छूटें इसलिए चट्टान से हाथों को दबा दिया था। इस अनुपम त्याग व बलिदान से शत्रु सेनानायक का हृदय द्रवित हो उठा। वह अपनी सेनासहित अपने राज्य को वापस लौट गया।

नकारात्मक भावों का निग्रह

भाव-संवेदनाएँ व्यक्तित्व के हृदय-क्षेत्र से जुड़े वो तत्त्व हैं, जो अस्तित्व के गहनतम तलों से उद्भूत होते हैं। ये व्यक्ति के विचार और व्यवहार को सीधा प्रभावित करते हैं। भाव के अनुरूप ही विचार ढलने के लिए विवश-बाध्य होते हैं और विचार के अनुरूप ही कर्म घटित होते हैं और ये भाव सकारात्मक व नकारात्मक, दोनों रूपों में विद्यमान रहते हैं।

सकारात्मक भाव तो निश्चित रूप में जीवन को प्रेरित व प्रभावित करते हैं, इसके लिए ईंधन का काम करते हैं, लेकिन नकारात्मक भावों की भी अपनी उपयोगिता रहती है, यथा क्रोध, भय, ईर्ष्या, अपराध बोध, हीनता आदि। क्रोध एक सीमा में ईंधन का काम करता है, आगे बढ़ने के लिए, अन्याय के विरुद्ध खड़ा होने के लिए, बुराई से लोहा लेने के लिए; लेकिन यदि यह अनावश्यक रूप में व्यक्त होने लगे तो यह व्यक्ति के लिए घातक बन जाता है। इसी तरह भय जीवन-रक्षा में सहायक भाव है, जो हमें अनावश्यक खतरों में उलझने से बचाता है, लेकिन यदि भय अत्यधिक बढ़ने लगे तो यह पेनिक से लेकर फोबिया के रूप में व्यक्ति के जीवन को दूभर कर सकता है।

इसी तरह अपराध-बोध एक सीमा तक व्यक्ति को अवांछनीय कार्यों से बचने में सहायक रहता है, लेकिन यदि यह एक ग्रंथि के रूप में व्यक्तित्व में घर कर जाए, तो यह व्यक्ति के जीवन को कुंठित कर देता है। ईर्ष्या का भाव यदि स्वस्थ प्रतिस्पर्धा के लिए प्रेरित करता हो, तो इसे उपयोगी माना जा सकता है, लेकिन यदि यह व्यक्ति को अनावश्यक जलन, प्रतिस्पर्धा व नकारात्मक क्रिया के लिए प्रेरित करने लगे तो फिर इसे नुकसानदेह माना जाएगा।

इसी तरह हर भाव के सकारात्मक एवं नकारात्मक पहलू को देखा जा सकता है। सकारात्मक भावों की भी अधिकता जीवन में प्रतिकूल प्रभाव डालती है। बहुत अधिक खुशी, प्रेम, दया, करुणा आदि अपनी परिणति में नुकसानदेह साबित होते हैं। अत्यधिक प्रेम में व्यक्ति आसक्ति के वशीभूत हो सकता है, गलत निर्णय ले सकता है। अत्यधिक खुशी में जीवन के यथार्थ स्वरूप को व्यक्ति समझ नहीं पाता। अत्यधिक दया का भाव भी व्यावहारिक जीवन को बाधित कर सकता है। अत्यधिक विनम्रता को भी उचित नहीं माना जा सकता।

सकारात्मक भावों के साथ नकारात्मक भाव अपनी तीव्रता में अधिक घातक रहते हैं। घनीभूत रूप में ये जीवन को गहरे से प्रभावित करते हैं। ये व्यक्ति के शारीरिक स्वास्थ्य से लेकर मानसिक स्वास्थ्य को चौपट कर सकते हैं। तमाम तरह के शारीरिक रोगों को नकारात्मक भावों के साथ जुड़ा पाया गया है; मानसिक रूप में ये हलके मनोविकारों से लेकर गंभीर मानसिक रोग का रूप लेते देखे जाते हैं।

इनके रहते व्यक्ति का व्यवहार व चिंतन-प्रक्रिया बुरी तरह से प्रभावित होते हैं। उसका पारिवारिक जीवन दूभर हो जाता है, तमाम तरह के कलह-क्लेश इसमें जुड़ते जाते हैं, घरेलू हिंसा से लेकर आपराधिक स्तर तक इनका चिंताजनक विस्तार देखा जा सकता है। इनके चलते व्यक्ति का सामाजिक जीवन भी विकट हो जाता है। स्वस्थ संबंधों व समायोजन के अभाव में ऐसा व्यक्ति समाज में अलग-थलग पड़ जाता है और इसके लिए कोई सार्थक योगदान की स्थिति में फिर वह नहीं रह जाता।

जो व्यक्ति अपने ही शारीरिक व मानसिक असंतुलन के लिए संघर्ष कर रहा हो, उससे समाज के लिए किसी सार्थक कार्य की आशा नहीं की जा सकती।

इस तरह एक सुखी, सफल व सार्थक जीवन जीने के लिए भाव-संवेगों का प्रबंधन आवश्यक हो जाता है। व्यक्ति अपने सचेष्ट प्रयास के आधार पर इनके मकड़जाल से बाहर निकल सकता है।

क्रोध का आवेग आने पर मौन रहना बेहतर रहता है, इस अवस्था में कोई भी निर्णय न लें। अपनी साँसों पर ध्यान देते हुए, इन्हें लयबद्ध करने का प्रयास करें, अपने अंदर ध्यान को केंद्रित करते हुए कुछ मिनट इंतजार करें। इसके लिए आप 1 से लेकर 20 तक की गिनती का सहारा ले

सकते हैं। क्रोध का वेग शांत होने पर अपनी वाणी व व्यवहार के संयम को देखकर संतोष का भाव जगेगा, मन में अधिक स्थिरता व संतुलन अनुभव होगा।

इसी तरह भय के संवेग का प्रबंधन किया जा सकता है। भय अपने बढ़े-चढ़े रूप में जीवन को स्तंभित करने वाला एक बड़ा तत्त्व है। सीधे बड़े भय का सामना करने के बजाय इसको चरणबद्ध रूप में सामना करते हुए, इस पर काबू पाया जा सकता है। जैसे किसी को मंच पर भीड़ का सामना करने में भय लगता हो, तो पहले छोटे समूह के बीच बोलने का अभ्यास किया जा सकता है। छोटे भय का सामना करते हुए क्रमिक रूप से बड़े भय पर काबू पाया जा सकता है।

द्वेष-दुर्भाव, प्रायः गलतफहमी के कारण पनपते हैं। इनकी जड़ में संवादहीनता प्रमुख कारण रहती है। एकदूसरे के साथ सकारात्मक संवाद स्थापित करते हुए इनका परिष्कार किया जा सकता है। ईर्ष्या में दूसरों से अनावश्यक प्रतिद्वंद्विता व उनकी प्रगति से जलन का भाव रहता है। इसके स्थान पर अपनी मौलिकता को समझते हुए अपने लक्ष्य पर केंद्रित रहें तथा अपने कर्त्तव्यों का पालन करते रहें।

यह ईर्ष्या के निग्रह का एक प्रभावी उपाय रहता है। अपराध बोध, प्रायः किसी लागत कार्य को करने पर होता है। ऐसा होने पर इसकी तह तक जाकर अपने प्रायश्चित भाव को जगाएँ तथा सुधार के संकल्पित प्रयास के साथ इसके नकारात्मक प्रभाव को कम करने का प्रयत्न करें। इसके साथ सतत श्रेष्ठ चिंतन व कर्म में निमग्न रहने पर इसका गहनतम स्तर से उपचार होता रहता है।

हीनता प्रायः दूसरों से तुलना करने पर व स्वयं को कमतर आँकने पर जगती है। अपने जीवन की मूल विशेषताओं व उद्देश्य को खोजकर इस पर कार्य करते हुए इससे उबरा जा सकता है। अपने अद्वितीय गुणों के आधार पर अपनी श्रेष्ठता का चिंतन इससे उबारने में सहायक रहता है।

इनके साथ संयम, स्वाध्याय, साधना व सेवा जैसे आध्यात्मिक सूत्रों का अभ्यास करते हुए नकारात्मक भावों के जड़-मूल उपचार की पृष्ठभूमि तैयार की जा सकती है। इस तरह हम जहाँ भी खड़े हैं, वहीं से अपने जीवन में विरासत में मिले नकारात्मक भावों का ईमानदारी से मूल्यांकन करते हुए, उनके उपचार के सूत्रों का पालन करते हुए, इनका प्रभावी प्रबंधन कर सकते हैं। ❑

देशमान्य गोपालकृष्ण गोखले बाल्यकाल में बहुत गरीब थे। उनकी प्रारंभिक शिक्षा किसी प्रकार पूर्ण हो गई थी। जब कॉलेज की खरचीली पढ़ाई का प्रश्न सामने आया तो गोखले चिंतित हो गए। तब उनकी भाभी ने अपने आभूषण बेचकर उनकी फीस भरी।

उनके बड़े भाई गोविंद राव अपने पंद्रह रुपये के मासिक वेतन में से सात रुपये गोखले जी को भेज देते थे और शेष आठ रुपयों से अपना खरच चलाते थे। शिक्षा पूर्ण होने पर गोखले जी को पैंतीस रुपये मासिक की नौकरी मिल गई। बड़े भाई के उपकार से उनका रोम-रोम कृतज्ञ था, इसलिए वे ग्यारह रुपये अपने पास रखकर चौबीस रुपये प्रतिमाह अपने भाई को भेज देते थे। उनके भाई ने उन्हें ऐसा करने से बहुत मना किया तो वे बोले—"भाई साहब! यह रुपयों का बदला रुपयों से नहीं है, बल्कि ममता का उत्तर श्रद्धा से है।" यह सुनकर उनके भाई ने उन्हें गले लगा लिया।

यथार्थ की कसौटी पर विश्वास

विगत अंक में आपने पढ़ा कि परिवर्तन की वेला में गायत्री चेतना से प्रभावित हो विभिन्न क्षेत्रों के लब्ध प्रतिष्ठित लोग गायत्री परिवार के संपर्क में आने लगे। इसी क्रम में प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी एवं चर्चित राजनेता व उत्तर प्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल चेन्ना रेड्डी का शांतिकुंज आगमन हुआ। सन् 1977 में शांतिकुंज पधारे चेन्ना रेड्डी पूज्य गुरुदेव द्वारा स्थापित अध्यात्मवादी सामाजिक तंत्र को देखकर बहुत प्रभावित हुए। अपने राजनीतिक ऊहापोह के मध्य भी सूक्ष्मसत्ता की प्रेरणा से विगत कुछ वर्षों से उनमें देश में स्थित विभिन्न धार्मिक संस्थाओं एवं उनकी निधि का समाज के कल्याणार्थ सदुपयोग किए जाने का भाव उठा था। अपने कार्यकाल में चेन्ना रेड्डी ने विभिन्न स्तर पर सरकारी रीति-नीति से ऐसी व्यवस्था को लागू करने के भी कई प्रयास किए थे, परंतु वे इसमें अधिक सफल न हो सके थे। पूज्यवर की प्रेरणा को उनके इसी परिप्रेक्ष्य में लिखे गए साहित्य के माध्यम से ग्रहण करने के उपरांत उनका शांतिकुंज आना हुआ, जहाँ उन उच्च आदर्शों का सम्यक निर्वहन कर रही इस इकलौती संस्था की कार्यप्रणाली को देखकर वे न केवल अभिभूत हुए, वरन उसे अन्य धार्मिक संस्थानों के लिए भी अनुकरणीय बताया। आइए पढ़ते हैं इससे आगे का विवरण ...

1979 में गायत्री जयंती पर ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की विधिवत् स्थापना हुई। आरंभ परंपरागत उद्घाटन प्रक्रियाओं से हटकर अलग ढंग से हुआ था। संस्थान के परिसर में बनी यज्ञशाला में उस दिन पलाश और बबूल की चुनी हुई समिधाएँ रची गई थीं। भोर सवेरे उनमें गोघृत से सिक्त रूई की बत्तियों से अग्नि का संधान हुआ। अग्नि प्रज्वलित करने के लिए माचिस की तीली या कहीं और से लाई गई बत्ती अथवा अंगार का उपयोग नहीं हुआ। गुरुदेव के चुने हुए पाँच साधक यज्ञकुंड के आस-पास बिठाए गए। इन्होंने चालीस दिन का अनुष्ठान किया था और हविष्यान्न पर रहते हुए गुरुदेव द्वारा निर्दिष्ट नियम अनुशासन का पालन किया था। पवित्रीकरण, आचमन आदि षट्कर्मों के बाद देवपूजन के उपचार संपन्न हुए।

इन उपचारों के बाद विधिवत् यज्ञ अग्निहोत्र आरंभ हुआ। आहुतियाँ दी जाने लगीं। अग्निकुंड से उठती हुई लपटें और उनमें स्वाहा होती आहुतियों से जो धूम्र निकलता था, उसे देखकर उपस्थित जन अद्भुत अनुभव कर रहे थे। उन्हें प्रतीत हो रहा था कि अग्निदेव अपनी सातों जिह्वाओं से आहुति स्वीकार कर रहे हैं। इस अलौकिक अनुभूति के साथ एक और दृश्य वहाँ माध्यम बने बैठे साधकों से बन रहा था। उन साधकों की कलाई पर, बाहों में, सीने पर, माथे पर और पैरों में चिकित्सकीय उपकरण बाँधे गए थे। नब्ज की गति, रक्तचाप, हृदय की गति, मस्तिष्कीय तरंगें और शिराओं में होने वाले परिवर्तनों को रिकार्ड करने वाले इन यंत्रों की रिकार्डिंग परखने और नोट करने के लिए तीन चिकित्साकर्मी लगे हुए थे। यह दृश्य अस्पतालों में होने वाले जाँच-परीक्षणों जैसा था। लग रहा था जैसे उन युवकों की स्वास्थ्य परीक्षा की जा रही हो। यज्ञ आरंभ होने से पहले भी इन्हीं उपकरणों से युवकों की जाँच की गई थी और उनसे प्राप्त विवरण अलग रखे गए थे। यज्ञ संपन्न होने के बाद रक्तचाप, हृदय, मस्तिष्कीय तरंगें और शरीर में होते रहने वाले परिवर्तनों को भी नोट किया जा रहा था। इसी तरह परिसर में लगे पुष्प-पादपों और औषधीय वनस्पतियों, वहाँ के पानी और हवा को जाँचने के उपाय भी किए गए थे। इन उपायों के जो निष्कर्ष आए, उनकी चर्चा आगे करेंगे। यहाँ एक संदर्भ के तौर पर ही कि यज्ञ के प्राचीन स्वरूप और रहस्य की एक प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति के साथ उसके प्रभावों के अध्ययन की यह शुरुआत थी। शुरुआत जिसे इस

परिसर तक ही सिमटकर नहीं रह जाना था, बल्कि आने वाले वर्षों में दिग्दिगंत तक फैल जाना था। बहुत सारे आमजन इसके साक्षी नहीं थे।

इस स्थापना से पहले वसंत पर्व पर भी ब्रह्मवर्चस आरण्यक में साधकों ने एक आयोजन में हिस्सा लिया था। उस दिन सुबह होने से पहले ही पानी बरसना शुरू हो गया। लगता था जैसे वर्षा के अधिपति देव वरुण भी संस्थान के शिला पूजन और संस्थापन कार्यक्रम के साक्षी बनने के लिए उत्सुक थे। बरसते पानी में शांतिकुंज में निवास कर रहे कार्यकर्त्ताओं और बाहर से आए परिजनों ने भूमि-पूजन किया। उसके बाद अपने हाथ से एक-एक ईंट रखी। इस प्रतीक से संकल्प जताया कि वे इस दिव्य अनुष्ठान में भागीदारी कर रहे थे। औपचारिक उद्घाटन लगभग 10 बजे उत्तर प्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल जी.डी. तपासे ने किया। उद्घाटन के बाद उन्होंने कहा भी कि वे यहाँ एक साधक और प्राचीन विधाओं के अन्वेषक विद्यार्थी के रूप में आए हैं। उद्घाटन के बाद उन्होंने कुछ कहने से यह कहते हुए मना कर दिया कि गुरुदेव के होते हुए अध्यात्म और संस्कृति विषयों पर बोलना ठीक नहीं होगा।

ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान बीसवीं शताब्दी पूरी होने से कोई बीस वर्ष पहले एक प्रयोग के रूप में जन्म लेता दिखाई दिया। आरंभ तो 1965 के आस-पास ही हो गया था। तब यह प्रयोग अखण्ड ज्योति पत्रिका के पन्नों पर और तत्त्वज्ञानी विज्ञानियों को परामर्श प्रेरणा के रूप में दिखाई देता था। विधिवत् और व्यवस्थित शोध-अनुसंधान की प्रक्रिया अब होती दिखाई दी। ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की स्थापना के समय वैदिक विद्वान आचार्य सत्यव्रत विद्यालंकार, डॉ० हर गोविंद, आर्यसमाज के संन्यासी महात्मा वेदभिक्षु भी मौजूद थे। दिल्ली विश्वविद्यालय से आए विज्ञान के प्रोफेसर डॉ० अजय मलिक, केंद्र सरकार के स्वास्थ्य मंत्रालय के अधीन चलने वाले निकाय आयुर्वेद संस्थान और बैंगलुरू विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ० एच० नरसिम्हैया (जिन्होंने चमत्कारों और साधु-संतों के दावों को खुली चुनौती दी थी) के सहयोगी डॉ० रामलिंगम भी मौजूद थे। इन विद्वानों ने समिधाधान की प्रक्रिया को भी बारीकी से निरखा-परखा था कि मंत्र पढ़ने से अग्नि प्रकट होने का दावा कहीं दिखावा तो नहीं है। वे पूरी तरह संतुष्ट थे और आयोजन संपन्न हो गया तो दोपहर बाद उन्होंने गुरुदेव से अपनी शंका के बारे में बताया भी। साथ ही यह भी कहा कि हमारी शंकाएँ निर्मूल साबित हुई हैं। गुरुदेव ने उनसे कहा—"आप जैसी विभूतियाँ थोड़ा-सा प्रयत्न करें तो आज जिन आर्ष तथ्यों को सही साबित करने के लिए प्रमाण देना पड़ता है, वही तथ्य हमारी वैज्ञानिक संपदा बन सकते हैं।"

उन विभूतिवान अतिथियों ने इस आश्वासन को चुपचाप सुना और स्वीकार भी किया। फिर गुरुदेव ने कहा—"यह प्रयोग तो उस विज्ञान का परिचय-प्रतीक है। हम लोग संकल्पबद्ध हैं कि भारतीय मनीषा को विज्ञान के आधार पर कसकर दिखाएँगे। अपने अनुभव से तो हम यह बात कह सकते हैं कि भारत की ऋषिपरंपरा वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है, लेकिन सैकड़ों साल से अँधेरे में खोई हुई इस परंपरा को तर्क, तथ्य और प्रमाणों से सही साबित करेंगे।

आकार लेता अभियान

1979 का वर्ष गायत्री परिवार के साधना स्वर्ण जयंती वर्ष के उत्तरार्द्ध रूप में भी मनाया जा रहा था। इसी वर्ष गायत्री शक्तिपीठों की स्थापना और निर्माण का संकल्प भी उभरा था। गुरुदेव ने कई मोर्चे खोल दिए थे। यह भी कह सकते हैं कि ये मोर्चे नवसृजन के लिए बड़ी विकट चुनौती के रूप में थे। इन स्थापनाओं में ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान ही था, जो आकार लेता दिखाई दे रहा था; बाकी दो कार्यक्रम या अभियान साधकों के मन, मस्तिष्क और क्रियाकलापों में उथल-पुथल मचा रहे थे। सूक्ष्मजगत् में शोध संस्थान की रूपरेखा पंद्रह-सोलह साल पहले ही उभरने लगी थी। प्रत्यक्ष जगत् में उसकी झलक 1978 के आस-पास मिलने लगी। उस समय सप्त सरोवर मार्ग पर संस्थान का भवन बनकर तैयार हो गया था। साल भर से बन रहे इस भवन के बारे में यदा-कदा ही चर्चा होती थी। यों गुरुदेव लगभग प्रतिदिन कार्य की प्रगति देखने जाते थे।

शांतिकुंज से ब्रह्मवर्चस के लिए तब सप्तर्षि आश्रम होकर आना पड़ता था। शांतिकुंज और सप्तसरोवर को जोड़ने वाली सड़क तब नहीं बनी थी और गुरुदेव पैदल ही ब्रह्मवर्चस तक आते-जाते थे। भवन के बारे में तो वे कभी कदा चर्चा करते भी थे, लेकिन शोध संस्थान की कार्ययोजना और पद्धति के बारे में उन्होंने तब किसी चर्चा में विशेष उल्लेख नहीं किया था।

डॉक्टर साहब को गुरुदेव ने शांतिकुंज के मुख्य भवन में यहाँ-वहाँ रखी पुस्तकों को व्यवस्थित करने के काम में

लगाया था। उन दिनों डेढ़-दो सौ शिविरार्थी शांतिकुंज में होते। साठ-सत्तर देवकन्याएँ भी तब यहाँ थीं। दस-पंद्रह कार्यकर्त्ताओं के परिवार तब ब्रह्मवर्चस के कार्यकर्त्ता खंड में और आस-पास के मकानों में रहते थे। डॉक्टर साहब ने शांतिकुंज के मुख्य भवन में बनी अलमारियों से अपना काम शुरू किया। मुख्य भवन के भूमितल और पहली मंजिल पर तब करीब अट्ठाईस अलमारियों में रखी पुस्तकों में अगर कोई संवेदना या अनुभूति हो सकी तो उन्हें खुशी ही हुई होगी कि सात-आठ वर्ष बाद उनकी सुध ली जा रही थी। अभी तक जिसे जरूरत होती, वह अपने काम की पुस्तक या संदर्भ तलाशने के लिए भूमितल पर बनी बीस अलमारियों को खँगालना शुरू करता। तीन-चार अलमारी देखने के बाद अभीष्ट विषय की दो-तीन पुस्तकें मिल जातीं और काम वहीं ठहर जाता। पुस्तकें टटोलने या संदर्भ जाँचने की जरूरत भी कम पड़ती; क्योंकि अखण्ड ज्योति के प्रायः सभी लेख गुरुदेव के लिखे होते थे। उन दिनों प्रकाशित 'युग शक्ति गायत्री' भी उन्हीं की लेखनी से आती थी। गुरुदेव को कोई संदर्भ देखने की जरूरत ही नहीं पड़ती। युग निर्माण योजना मासिक और पाक्षिक (बाद में साप्ताहिक) की सामग्री मथुरा में तैयार होती। शांतिकुंज में उन दिनों जो कार्यकर्त्ता थे, वे प्रायः व्यवस्था-कार्यों में ही लगे रहते थे। गुरुदेव ने डॉक्टर साहब को पुस्तकों और संदर्भ सूचनाओं को व्यवस्थित करने में लगाया तो देखने वालों में कुछ को थोड़ा आश्चर्य जरूर हुआ, पर ज्यादातर ने इसे किसी महती योजना का अंश ही समझा।

(क्रमशः)

एक बार भगवान विष्णु के मन में विचार आया कि मनुष्य को बनाए और संसार की व्यवस्था सौंपे बहुत वर्ष बीत गए। चलकर देखना चाहिए कि वह क्या कर रहा है ? ऐसा सोचकर वह धरती पर पहुँचे। भगवान के आगमन का समाचार सुनकर अनेक पृथ्वीवासी उनसे मिलने पहुँचे। भगवान ने गीता की व्याख्या करनी आरंभ की, कर्त्तव्य, धर्म का ज्ञान देना प्रारंभ किया, परंतु किसी ने उस चर्चा में रस लेना आरंभ नहीं किया। सभी अपनी मनोकामना को पूर्ण कराना चाहते थे।

भगवान ने बार-बार समझाया कि कामनाओं की पूर्ति कर पाना संभव नहीं, आत्मज्ञान ही एकमात्र मार्ग है, पर किसी ने कुछ नहीं सुना और मात्र कामनाओं की पूर्ति का ही आग्रह करते रहे। भगवान खीझकर बदरीनाथ चले गए, पर मनुष्य वहाँ भी पहुँच गए तब भगवान द्वारका जी में जाकर बैठ गए। कामनापूर्ति चाहने वालों की भीड़ वहाँ भी पहुँच गई। अंततः भगवान ने निश्चय किया कि मनुष्य के हृदय में निवास करेंगे। मूढ़ व्यक्ति उनकी तलाश बाहर करते हैं, पर वो तो हमारे भीतर बैठे हैं।

प्रदूषित यमुना की व्यथा

यमुना से भगवान कृष्ण का अटूट नाता रहा है और इसकी पवित्रता को बरकरार रखने के लिए उन्होंने कालिया नाग को खतम किया था, लेकिन द्वापर में प्रदूषित होने से बची यमुना कलियुग में जहर उगलते कारखानों और गंदे नालों की वजह से मैली हो गई है। यमुना की निर्मलता और स्वच्छता को बनाए रखने के दावे तो किए जा रहे हैं, लेकिन इस पर कायदे से अब तक अमल नहीं हो पाया है।

अपने उद्गम से लेकर प्रयाग तक बहने वाली इस नदी की थोड़ी-बहुत सफाई बरसात के दिनों में इंद्र देव की कृपा से जरूर हो जाती है, लेकिन यमुनोत्तरी से निकली इस यमुना की व्यथा बेहद दुःखद है। अतीत में यमुना को भी पवित्रता और प्राचीन महत्ता के मामले में गंगा के बराबर ही अहमियत मिलती थी। पश्चिम हिमालय से निकलकर उत्तर प्रदेश और हरियाणा की सीमाओं की विभाजन रेखा बनी यह नदी पचानवे मील का सफर तय कर उत्तरी सहारनपुर के मैदानी इलाकों में पहुँचती है। फिर पानीपत, सोनीपत, बागपत होकर दिल्ली में आगरा होते हुए प्रयाग पहुँचती है और गंगा में समा जाती है।

पिछले कई दशकों में सरकारों ने यमुना की सफाई के नाम पर अरबों रुपये खरच किए, पर साफ-सुथरी दिखने के बजाय यमुना और ज्यादा मैली होती गई। दिल्ली में यमुना की सफाई के नाम पर अब तक हजारों करोड़ रुपये खरच हो चुके हैं। ढाई हजार करोड़ रुपये अभी और खरच होने हैं। दिल्ली में यमुना में अठारह बड़े नाले गिरते हैं, जिनमें नजफगढ़ का नाला सबसे बड़ा और सबसे अधिक प्रदूषित है। इस नाले में शहरी इलाकों के अड़तीस और ग्रामीण इलाकों के तीन नाले गिरते हैं। यह नाला वजीराबाद पुल के बाद सीधे यमुना में गिरता है।

वजीराबाद, आईटीओ और ओखला में तीन बाँध हैं। इसका उद्देश्य यमुना के पानी को रोककर दिल्ली की पेयजल की जरूरत को पूरा करना है। वजीराबाद पुल से शुरू में तो फिर भी यमुना का पानी पीने लायक दिखता है, लेकिन यमुना यहाँ से आगे बढ़ती है तो नजफगढ़ का नाला इसमें गिरता है और फिर पानी का रंग बदलकर काला हो जाता है।

कश्मीरी गेट बस अड्डे पर बने पुल से गुजरने पर एक तरफ नाले जैसी दिखती यमुना की धारा के बीच झोंपड़ी डालकर साग-सब्जी उगाने वाले किसान दिखाई देते हैं तो दूसरी तरफ दर्जनों की संख्या में धोबी घाट। इससे बदतर हालात लोहे वाले पुल से दिखाई देते हैं। एक तरफ यमुना में कचरे का अंबार दिखता है तो दूसरी तरफ काला स्याह पानी। आईटीओ पुल, निजामुद्दीन और टोल ब्रिज से गुजरने पर दो-तीन धाराओं में बहती यमुना नदी कम और बड़ा नाला ज्यादा नजर आती है।

यमुना के प्रदूषण ने दिल्ली मेट्रो रेल कॉरपोरेशन की चिंता भी बढ़ा दी है। इसके प्रदूषित पानी में मिले औद्योगिक कचरे से ऐसी जहरीली गैसें निकल रही हैं कि उनके प्रभाव से यमुना के ऊपर से गुजरने वाली मेट्रो भी प्रभावित हो रही है। इनकी वातानुकूलन प्रणाली पर इन गैसों का प्रभाव पड़ रहा है। आमतौर पर रात के समय गैस ज्यादा निकलती है।

छानबीन से सामने आया है कि प्रदूषित जल से अमोनिया और हाइड्रोजन सल्फाइड जैसी जहरीली गैसें निकलती हैं और मेट्रो के डिब्बों की एसी प्रणाली के कंडेंसरों पर लगी कोटिंग इससे हट जाती है। नतीजतन एसी की गैस रिस जाती है। इस वजह से मेट्रो के कंडेंसर बार-बार बदलने पड़ रहे हैं।

इस शिकायत का संज्ञान लेते हुए केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने यमुना के ऊपर की हवा का विश्लेषण कराने का फैसला किया है। वैज्ञानिकों का कहना है कि ये जहरीली गैसें अगर मेट्रो के एसी को प्रभावित कर रही हैं तो आस-पास के इलाकों में रह रहे लोगों को भी बीमार बना रही होगीं। कालिंदी कुंज के पास यमुना में गिरने वाला गंदा नाला तो कचरे से लबालब तालाब जैसा नजर आता है।

इसी में तपती गरमी से राहत पाने के लिए मवेशी तैरते दिखते हैं; जिसे देखकर रसखान की याद आ जाती है। रसखान आज होते तो अपनी लिखी इन पंक्तियों पर पछताते-

'जो खग हौं, तौ बसेरो करौं, मिलि कालिंदी कूल-कदंब की डारन।'

दिल्ली में यमुना का पाट डेढ़ से तीन किलोमीटर तक चौड़ा है। दिल्ली में इसका कुल दायरा सतानवे वर्ग किलोमीटर है। जिसमें से करीब सत्रह वर्ग किलोमीटर पानी में है, जबकि अस्सी वर्ग किलोमीटर सूखा पाट। करीब पचास किलोमीटर लंबी यमुना में वजीराबाद बैराज तक पानी साफ दिखता है, लेकिन पच्चीस किलोमीटर दूर जैतपुर गाँव में यह खासा प्रदूषित हो जाता है।

यह भी एक तथ्य है कि यमुना के किनारे बसे शहरों में सबसे ज्यादा प्रदूषित इसे दिल्ली ही करती है। इसमें गिरने वाली कुल गंदगी में से अस्सी फीसद दिल्ली की होती है। प्रदूषित कचरे की वजह से ही इसके पानी में ऑक्सीजन की मात्रा लगभग खतम हो गई है। वजीराबाद से ओखला बाँध तक सबसे ज्यादा प्रदूषण है।

दिल्ली सरकार के ओखला में कूड़े से खाद बनाने के कारखाने से निकलने वाली जहरीली गैस से आस-पास के लोगों का जीना दूभर हो गया है। ऐसा ही संयंत्र दशकों पहले वजीराबाद पुल के पास बना था। यह संयंत्र पानी के संशोधन के साथ कूड़े से बिजली बनाने के लिए लगाया गया था, लेकिन करोड़ों रुपये खरच करने के बाद पता चला कि यहाँ का कचरा इस लायक है ही नहीं कि उसका ट्रीटमेंट कर उससे बिजली बनाई जा सके।

यही हाल उन नालों पर लगे जल ट्रीटमेंट संयंत्रों का है, जिनका तीन-चौथाई गंदा पानी सीधे यमुना में मिलता है। सच्चाई यह है कि दिल्ली जल बोर्ड के सत्रह सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट हैं, जिनकी जलशोधन-क्षमता करीब 355 एमजीडी है; जबकि होनी चाहिए 512 एमजीडी प्रतिदिन। जाहिर है कि शेष गंदा पानी नालों के जरिए यमुना में ट्रीटमेंट के बिना ही बहाया जा रहा है।

यमुना की सफाई के लिए कार्य-योजना सरकार ने काफी पहले बनाई थी। मसलन पहला यमुना एक्शन प्लान सन् 1993 में लागू हुआ था, जिस पर करीब 680 करोड़ रुपये खरच हुए, फिर 2004 में दूसरा प्लान बना। इसकी लागत 624 करोड़ रुपये तय की गई। अगर यमुना के प्रदूषण की बात करें तो इसे गंदा करने में दिल्ली सबसे आगे है। बेशक कसर हरियाणा और उत्तर प्रदेश भी कुछ नहीं छोड़ रहे।

उत्तर प्रदेश में भी मथुरा और आगरा जैसे शहरों के गंदे नाले सीधे यमुना में गिरते हैं। इन्हें रोकने के लिए अब तक गंभीर कोशिश नहीं हुई है। हकीकत तो यह है कि आज की यमुना अपने उद्गम से लेकर संगम तक कहीं भी गंदगी से मुक्त नहीं है। हालाँकि दिल्ली, हरियाणा और उत्तर प्रदेश के इक्कीस शहरों में अब तक यमुना की सफाई पर 276 योजनाएँ क्रियान्वित की जा चुकी हैं; जिनके माध्यम से 75325 लाख लीटर सीवर उत्प्रवाह के शोधन की क्षमता सृजित किए जाने का सरकारी दावा है, परंतु यह मात्र एक दावा है।

एक तरफ यमुना को बचाने के नाम पर सरकारी योजनाएँ बन रही हैं तो दूसरी तरफ कुछ गैरसरकारी संस्थाएँ भी मैली यमुना में सीधे न सही, पर रस्म अदायगी के जरिए तो डुबकी लगा ही रही हैं। ऐसे आधे-अधूरे प्रयासों से न यमुना की दशा सुधरने वाली है और न इस प्राकृतिक धरोहर को बरबाद होने से रोका जा सकता है। सचमुच यमुना को बचाना है तो इसके लिए एक तरफ तो सामाजिक चेतना जगानी होगी, दूसरी तरफ इसे गंदा करने वालों पर कड़ा दंड देना होगा। हकीकत तो यह है कि यमुना को बचाने के ज्यादातर प्रयास थोथे, दिखावटी और ढकोसला भर हैं। जो इससे सरोकार दिखाते हैं, वे भी अखबारों में फोटो छपवाने तक ही सीमित दिखते हैं। यमुना की धार्मिक और प्राकृतिक महत्ता है। अत: उस पवित्र नदी को बचाने के लिए संकल्प एवं प्रतिबद्धता की आवश्यकता है। ❑

शुभम् लब्ध्वा न हृष्येत् कुप्येल्लब्ध्वाशुभं न हि।
द्वन्द्वेषु समता यस्य ज्ञानवानुच्यते हि सः॥

अर्थात जो शुभ वस्तु को पाकर हर्ष से खिल नहीं उठता और अशुभ को पाकर क्रोध या शोक नहीं करता अर्थात सुख-दु:ख आदि सभी द्वंद्वों में सम भाव रखता है, वही ज्ञानवान कहलाता है।

आत्मबोध साधना पर शोध

देव संस्कृति विश्वविद्यालय में संपन्न कराए जाने वाले शोधकार्यों का एक मुख्य उद्देश्य प्राचीन ऋषि सिद्धांतों और गौरवशाली परंपराओं को वैज्ञानिक रीति से प्रमाणित कर तथ्यों के आधार पर प्रस्तुत करना तथा उनके सामयिक महत्त्व एवं प्रभाव से जनसामान्य को अवगत कराना रहा है। योग, आयुर्वेद, मनोविज्ञान, संस्कृति, शिक्षा, पर्यटन, पर्यावरण जैसे विभिन्न विषयों के अंतर्गत शोधार्थियों एवं आचार्यों के सम्मिलित प्रयासों ने इस दिशा में विश्वविद्यालय को सर्वथा एक नया आयाम प्रदान किया है।

शोध की उच्चस्तरीय गुणवत्ता की कसौटी पर संपन्न किए जा रहे यहाँ के शोध विषयों में शोधार्थियों द्वारा योग एवं अध्यात्म की साधना-विधियों को सम्मिलित कर जो परिणाम प्राप्त किए गए हैं, वे स्वास्थ्य, व्यक्तित्व विकास एवं रोगोपचार के क्षेत्र में समूची मानव जाति के लिए सर्वथा एक नूतन और अत्यंत प्रभावकारी विकल्प लेकर सामने आते हैं। इसी क्रम में विगत दिनों अध्यात्म साधना की एक विशिष्ट विधि 'आत्मबोध ध्यान-साधना' को लेकर महत्त्वपूर्ण शोधकार्य संपन्न किया गया है।

आत्मबोध ध्यान-साधना को योग एवं अध्यात्म जगत् के साधकों की दिनचर्या का अनिवार्य पहलू माना जाता है, परंतु इस अध्ययन में शोधार्थी ने इस विशिष्ट साधना-विधि को सर्वसामान्य के लिए व्यक्ति की आंतरिक क्षमताओं के विकास की सुगम और प्रभावकारी विधि के रूप में सामने लाकर सराहनीय कार्य किया है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि आत्मबोध ध्यान-साधना परमपूज्य गुरुदेव आचार्य श्रीराम शर्मा द्वारा प्रतिपादित ऐसी आध्यात्मिक तकनीक है जिससे संपूर्ण व्यक्तित्व का रूपांतरण संभव होता है। यह साधकों के लिए ही नहीं, अपितु सभी के लिए उपयोगी और लाभकारी है, परंतु इस अध्ययन में इस तकनीक को विद्यार्थियों, युवाओं के व्यक्तित्व निर्माण और उनमें जीवन की उच्चस्तरीय क्षमताओं के कारगर उपाय के रूप में प्रस्तुत कर और ज्यादा महत्ता और व्यापकता प्रदान की है।

शोधार्थी वसंत बल्लभ पाण्डे द्वारा यह शोधकार्य सन् 2017 में विश्वविद्यालय के योग एवं स्वास्थ्य विभाग के अंतर्गत संपन्न किया गया है। इस विशिष्ट शोध-अध्ययन को श्रद्धेय कुलाधिपति जी डॉ. प्रणव पण्ड्या के विशेष संरक्षण एवं निर्देशन में पूरा किया गया है। इस शोध-अध्ययन का विषय है—**'ए स्टडी ऑन दि इम्पैक्ट ऑफ सेल्फ स्पीरिचुअल इन्टेलिजेन्स'**। शोधकार्य के लिए इस विषय के चयन का उद्देश्य यह है कि मनुष्य के बहुआयामी जीवन में जिन तत्त्वों से जीवनमूल्यों की प्राप्ति होती है, उन्हें पहचानकर विकसित बनाने का सार्थक उपाय खोजना।

प्रगति, सफलता, सहजता, आनंद, संतुष्टि, प्रसन्नता, शांति और पूर्णता जैसे जीवनमूल्यों की आकांक्षा सभी करते हैं, परंतु इन्हें प्राप्त करने के लिए व्यक्तित्व में अंतर्निहित जिस ऊर्जा एवं क्षमता के विकास की आवश्यकता होती है, उसे नजरअंदाज कर देते हैं। यह अध्ययन प्रायोगिक रूप से ऐसी सुगम तकनीक की खोज करने का प्रयास है, जिसके द्वारा व्यक्तित्व की भावनात्मक योग्यता और आध्यात्मिक स्तर को विकसित बनाया जा सके।

शोधार्थी द्वारा इस अध्ययन के प्रयोग हेतु इंजीनियरिंग इन्स्टीट्यूट राजकोट, गुजरात के स्नातक एवं स्नातकोत्तर कक्षाओं के आकस्मिक चयन विधि द्वारा 138 विद्यार्थियों का चयन किया गया। इन सभी चयनितों की उम्र 20 से 30 वर्ष के मध्य थी। प्रयोग के लिए इन्हें समान रूप से तीन वर्गों में विभाजित किया गया। प्रयोग प्रारंभ करने से पूर्व शोध उपकरणों के माध्यम से शोधार्थी द्वारा सभी का स्वास्थ्य परीक्षण किया गया। परीक्षण हेतु जिन उपकरणों को प्रयुक्त किया गया, वे हैं—(1) अनुकूल हायदे, संजय पेठे एवं उपेंदर धार द्वारा निर्मित इमोशनल इन्टेलीजेन्स स्केल तथा (2) प्रो० आर० जैनुद्दीन एवं अन्जुम अहमद द्वारा निर्मित रोकन स्प्रीचुअल इन्टेलीजेन्स टेस्ट। इसके साथ ही परमपूज्य गुरुदेव द्वारा लिखित पुस्तक **'मैं क्या हूँ?'** उन्हें स्वाध्याय के लिए प्रदान की गई।

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

उक्त परीक्षण के उपरांत विद्यार्थियों के प्रथम ग्रुप को एक माह व दूसरे ग्रुप को दो माह की अवधि तक प्रतिसप्ताह पाँच दिन 45 मिनट की आत्मबोध ध्यान-साधना-विधि का अभ्यास कराया गया। प्रयोग की अवधि समाप्त होने पर पूर्व की भाँति पुन: परीक्षण किया गया तथा दोनों परीक्षणों से प्राप्त आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर शोध परिणामों के आधार पर यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि आत्मबोध ध्यान-साधना का विद्यार्थियों की भावनात्मक बुद्धिमत्ता एवं आध्यात्मिक योग्यता पर सकारात्मक एवं सार्थक प्रभाव पड़ता है।

इस अध्ययन के सकारात्मक परिणाम प्राप्त होने का मुख्य कारण शोधार्थी हेतु चयनित विशिष्ट ध्यान-विधि 'आत्मबोध ध्यान-साधना' है। यह पूज्य गुरुदेव द्वारा प्रदत्त ध्यान योग की एक विशेष तकनीक है, जिसके नियमित अभ्यास से स्व-अनुभूति की क्षमता प्रगाढ़ होती है और व्यक्ति अपने भीतर की सजगता, सहजता और प्रसन्नता को प्राप्त करता हुआ आत्मचेतना का संपूर्ण विकास करने में सक्षम बनता है। 45 मिनट की इस विशिष्ट ध्यान-विधि में क्रमश: चार सोपान सम्मिलित हैं। प्रथम चरण रिलेक्सेशन का है, जिसमें शरीर की पूर्ण विश्रांति हेतु स्वनिर्देश है। शरीर के प्रत्येक कण में शिथिलता और शांति का अनुभव प्राप्त करना है।

साधना का दूसरा चरण रचनात्मक कल्पनाशीलता से संबंधित है। इसमें शरीर की पूर्ण शिथिलता के पश्चात कल्पना द्वारा स्वयं को शरीर से बाहर अथवा शरीर से भिन्न चैतन्य स्व की अनुभूति को प्रगाढ़ करना होता है। इसी प्रगाढ़ता में स्वयं को प्रकाशवान सत्ता, स्वतंत्र और अविनाशी अस्तित्व का बोध कराना होता है। ध्यान का तीसरा चरण सजगता और वैराग्य-भावना को उत्प्रेरित करने वाला है।

इसमें साधक गहराई में अपने भीतर की विचार-तरंगों व भावनाओं को साक्षी रूप में देखने का प्रयास करता है और धीरे-धीरे उनके प्रभाव से मुक्त एक द्रष्टा की स्थिति को प्राप्त करता है। इसी साक्षीभाव को व्यापक बनाते हुए संसार की वस्तुओं, घटनाओं एवं परिवर्तनशीलता के प्रति सजगता प्राप्त कर, स्वयं को इनसे भिन्न चैतन्य एवं अपरिवर्तनशील अस्तित्व होने का बोध प्राप्त करता है।

आत्मबोध ध्यान-साधना के चतुर्थ एवं अंतिम चरण में साधक अपनी स्व-चेतना आत्मसत्ता के स्वरूप को संसार के सभी जड़-चेतन पहलुओं के विस्तार के रूप में अनुभव करता है। सभी में, सभी ओर स्वयं की आत्मा का प्रकाश ही दृष्टिगोचर होता है। इस अनुभूति को ग्रहण किया जाता है कि स्वयं की अविनाशी आत्मा भी परमात्मा का ही अंश है। वह भी विशुद्ध रूप से परमात्मा रूप ही है। परमात्मा और स्व-आत्मा, दोनों वस्तुत: एक ही हैं। दोनों में एकता का अनुभव 'सोऽहमस्मि' व 'अहं ब्रह्मास्मि' के बोध के रूप में स्व-अस्तित्व के कण-कण में प्रकाशित हो जाता है।

उक्त चार चरणों में पूरी होने वाली यह ध्यान-विधि मानव चेतना के मार्मिक केंद्रों को जाग्रत और प्रकाशित कर साधक को सर्वथा अलग दिव्य ऊर्जा और अनुभूति प्राप्त करने का एहसास कराती है। इसके नियमित व निरंतर अभ्यास से साधना में निर्दिष्ट भावनाओं, विचारों व कल्पनाओं का प्रभाव आंतरिक व्यक्तित्व पर पड़ता है फलस्वरूप मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक रूपांतरण घटित होकर व्यक्ति का जीवन आत्मबोध के प्रकाश से दीप्त हो उठता है। इस ध्यान-विधि की उक्त विशिष्टता के कारण ही शोधार्थी द्वारा इसे युवाओं के भावनात्मक एवं आध्यात्मिक योग्यता के विकास की एक समर्थ तकनीक के रूप में चयन कर उसके महत्त्व को वैज्ञानिक रीति से सामने लाया गया है।

शोधार्थी का मत है कि विद्यार्थी को अध्ययन काल में गुणवत्तापूर्ण परिणाम प्राप्त करने के लिए शारीरिक व मानसिक क्षमताओं के साथ-साथ भावनात्मक व आध्यात्मिक योग्यता का विकास करना भी अत्यंत आवश्यक है। पुस्तकीय व अन्य सामाजिक ज्ञान के साथ ही अपनी क्षमताओं, विशेषताओं और संभावनाओं की समझ भी आवश्यक है, ताकि स्वयं के प्रति ही नहीं अपितु बाहरी दुनिया के प्रति भी सजग रहे और एक उच्च गुणवत्ता वाले जीवन का निर्माण कर सके।

इन उच्चस्तरीय गुणों का सम्यक विकास करना आवश्यक है। परमपूज्य गुरुदेव द्वारा प्रतिपादित इस आत्मबोध ध्यान-साधना को उक्त क्षमताओं के विकास की एक उत्कृष्टतम विधि कहा जा सकता है। विद्यार्थियों, युवाओं को अपने व्यक्तित्व के संपूर्ण विकास और उच्चस्तरीय जीवन के निर्माण हेतु इस विशिष्ट ध्यान योग-साधना का नियमित अभ्यास करना चाहिए। ❑

दरकती संवेदनाओं का परिणाम

संवेदना मानवीय जीवन का आधार है। इसके बिना जीवन क्रूर एवं निर्मम बन जाता है। सकारात्मक मनोवृत्ति का प्रवाह जीवनपोषक होता है; जबकि नकारात्मक मनोवृत्ति जीवनशोषक है। जैसी हमारी संवेदना होगी, वैसा परिणाम मिलेगा, संवेदनहीन नकारात्मक विचार सारणी का परिणाम घर के पश्चिम दिशा की खिड़की की तरह होता है—जहाँ से कभी सूरज उगता ही नहीं। एक के बाद एक हो रही मनुष्यता की हत्या संवेदनहीनता का चरम है।

धोखेबाजी से इनसान की आँखों में खून सवार हो जाता है और हत्या को अंजाम देता है। संदेह, रिश्तों में संतुष्टि का अभाव, उम्मीद जितना स्नेह व सम्मान नहीं मिलना, संपदा का विवाद तब इसकी तलाश में लोग अक्सर रिश्तों की लक्ष्मण रेखा पार कर लेते हैं। अनाचार, अनैतिकता एवं शक-संदेह का हमेशा खौफनाक अंत ही होता है। आएदिन एक के बाद एक हो रही हत्याओं का सिलसिला यही बयाँ करता है कि भावनात्मक स्तर पर लोग इस कदर कमजोर हो गए हैं कि जिनके साथ जीने-मरने की कसम खाई, जिन्होंने जन्म दिया, जिनके साथ बचपन बीता उन्हीं को नष्ट करने की आसुरी तृष्णा-तृप्ति महसूस की जा रही है।

टीवी द्वारा दिखाए जाने वाले फूहड़ कार्यक्रम, रिश्तों को तोड़-मरोड़कर पेश किए जाने वाले धारावाहिक, फिल्मों में बाजारू कथा और आधुनिकता के नाम पर दरसाने वाली अतिरंजित प्रेम कहानियाँ समाज को प्रभावित कर रहे हैं। सोशल मीडिया के वाट्सअप, फेसबुक, यूट्यूब पर होने वाली पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति का मिला-जुला यह असर हो रहा है। मामूली विवाद पर हत्याओं का सिलसिला विगत कुछ समय में अधिक प्रमाण में देश में देखा जा रहा है। आपसी मनमुटाव, संदेह, कर्ज के बोझ आदि का खौफनाक अंत आत्महत्या में हो रहा है। अविश्वास, असुरक्षा, बीमारी से परेशान, पसंद की नौकरी नहीं मिलना, परीक्षा में अपेक्षित सफलता नहीं पाना भी आत्महत्या का कारण है।

ऑनर किलिंग या प्रताड़ना से हत्या-आत्महत्या के मामले सामने आते हैं। हत्या-आत्महत्या का विकल्प भी आसान हो गया है। झूठी शान, प्रतिष्ठा, इज्जत जाने के डर से भी लोग आत्महत्या करते हैं। इन समस्याओं को समझदारीपूर्वक हल करने के बजाय लोग क्षणिक आवेश में आत्महत्या को तत्पर हो जाते हैं। कानून का डर नहीं रहा। समाज का प्रभाव नहीं रहा। आत्महत्या के बाद पीछे रह गए माता-पिता, जीवनसाथी, बच्चे, भाई-बहन का क्या होगा, इसकी चिंता भी लोग नहीं करते। यदि इस बारे में शांतिपूर्वक सोच-विचार कर लेते तो आत्महत्या के क्षण को टाला जा सकता है।

एक बार वह घड़ी निकल जाए तो फिर आत्महत्या से बचा जा सकता है। अब तो सामूहिक रूप से आत्महत्याएँ-हत्याएँ होने लगी हैं। बाद में उनकी मौत पर शोक व्यक्त करने वाला भी नहीं बचता है। पारंपरिक रूप से मजबूत वैयक्तिक और भावनात्मक संबंधों और सहिष्णुता वाले इस देश में मृत्यु की इच्छा इस कदर क्यों बढ़ती जा रही है ? घर-परिवार, दोस्त-रिश्तेदार, दफ्तर-समाज और एक हँसती-खिलखिलाती दुनिया में उम्मीदों की डोर थामे जिंदगी रोजमर्रा के जीवन में व्यस्त रहती है, फिर अचानक कुछ ऐसा क्या होता है कि डोर टूट जाती है और जिंदगी शून्य हो जाती है। इस अवसाद के दौर में आत्महत्या जैसी घटनाएँ बढ़ रही हैं।

हमारे देश में भीड़ के द्वारा हत्या की घटनाएँ जगह-जगह पर हो रही हैं। इनके स्तर में चिंताजनक वृद्धि की स्थिति में सरकार नया कानून बनाने पर विचार कर रही है। गौ तस्करों, जातीय मतभेद, संदेहास्पद स्थिति में भीड़ द्वारा हत्या की घटनाएँ, गुस्से में आकर किए जाने वाले कृत्य भीड़तंत्र का परिणाम हैं। सभी घटनाएँ पूर्वनियोजित नहीं होती हैं। क्षणिक आवेश में भीड़ नियंत्रण खो देती है। इसी की प्रतीक्षा में बैठे असामाजिक तत्त्व, पत्थर फेंकने, दुकानें जलाने, सरकारी संपत्तियाँ लूटने में लग जाते हैं। अंतिम

परिणाम आगजनी, हत्या में सामने आता है। उन्मादी भीड़ विचार नहीं करती है।

जब तक सार्वजनिक सामाजिक-संपत्तियों के नुकसान की भरपाई भीड़तंत्र के आयोजकों से नहीं कराई जाएगी, तब तक ऐसी घटनाएँ बढ़ने की संभावना अधिक है। तथापि लोकतंत्र के इस देश में वोटबैंक की राजनीति के कारण गिरफ्तार किए गए असामाजिक तत्त्वों को भी पुलिस मामला ठंढा होने पर छोड़ देती है। ऐसे में कैसे रहेगा डर? सड़क पर नित्य नियम से दुर्घटना होती है, किंतु दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति के प्रति संवेदनाओं के भाव लुप्त हो जाते हैं। हमारी मानसिक संवेदनाएँ दरक रही हैं। इतिहास के पन्नों में भी असुरक्षित और अशिक्षित समाज में परिस्थितिजन्य घटनाओं के कारण भीड़ को हिंसक होते देखा गया है।

आज आएदिन किसी-का-किसी भीड़ द्वारा अफवाहों के आधार पर मार देना आम बात हो गई है। भीड़ को हिंसक बनाने के पीछे दुष्ट मनोवृत्तियों का हाथ होता है। समय पर तत्काल कार्रवाई कर दोषियों को शीघ्र कठोर दंड मिलना चाहिए। समाज का सांप्रदायीकरण कर सत्ता-सुख प्राप्त करने की लालसा में आम लोगों के अंदर कानून की अवहेलना की संस्कृति बो दी गई है। समय से इसका समाधान कर लिया जाना चाहिए अन्यथा अराजकता फैलती रहेगी, व्यवस्था चरमराती रहेगी, राष्ट्रीय संपत्ति को भारी क्षति पहुँचती रहेगी।

पहले की दुनिया में एक रावण, एक कंस, एक दुर्योधन, एक शकुनि होता था। अब तो ये गली-मुहल्लों में भी सहज मिल जाते हैं। भारत देश के विश्वगुरु बनने की बात चल रही है। क्या भारत इस क्षेत्र में भी पश्चिमी देशों से आगे जाना चाहता है? यह प्रश्न एक व्यक्ति, एक परिवार, एक समाज का नहीं। इसके समाधान के लिए सदाचार, नीति, नियम, संस्कारों को सशक्त करना चाहिए। संवेदना, सेवा एवं इनसानियत को शिक्षण में तरजीह देनी चाहिए। नैतिक शिक्षा का पाठ पढ़ाना चाहिए। उपरोक्त स्थिति को जानते हुए भी वर्तमान समय में हमारे परिवार क्लेश और द्वेष की ज्वाला में भस्म होते जा रहे हैं।

कारण है कि हम अपनी जड़ों से कटते जा रहे हैं। हम जड़ों को पानी नहीं देते, उसके फूल-पत्ते डाली को सींच रहे हैं। हम अपनी प्राचीन संस्कृति, परंपराओं और संस्कारों से आधुनिकता की आँधी में खिसकते जा रहे हैं। छोटी-बड़ी बातों पर अप्रसन्न होकर प्रेम की डोर में बँधे सुखी परिवार छिन्न-भिन्न हो रहे हैं। एक समय था, जब दादा-दादी की बगिया में माता-पिता, भाई-बहन, बेटे-बेटियों और पोते-पोतियों के समूह को परिवार कहा जाता था। अब एकल परिवार का प्रचलन हो गया है। उसमें बूढ़े माँ-बाप भी उपेक्षित होने लगे हैं, वे बोझ समझे जाने लगे हैं। स्वच्छंद-स्वतंत्र जीवन जीने की चाहत बढ़ गई है।

पहले स्नेह-आत्मीयता, प्रेम से आत्मबल मिलता था। तनावग्रस्त नहीं होने से मानवीय संवेदनाएँ हमारे साथ बनी रहती हैं। छोटी बातों को भूलकर एवं भविष्य की चिंता न कर वर्तमान को सँभालना ही हमारे हाथ में है। इसे सँभालने से जिंदगी सुख और खुशियों से भर जाएगी। पत्रिकाओं को अपने मुखपृष्ठ पर दुष्कृत्य की घटनाओं को स्थान नहीं देना चाहिए। केवल भीतर के पन्नों पर छोटे-से समाचार होने चाहिए। उसी प्रकार ऐसे समाचारों को टीवी चैनलों, यूट्यूब, फेसबुक पर प्रमुखता से स्थान नहीं देना चाहिए।

घटना कैसे घटी, कैसे हत्या आदि घृणित कार्यों को अंजाम दिया, इसका विवरण तो कदापि नहीं देना चाहिए। इस घटना को बार-बार बताने से भी मानवीय संवेदनाएँ दरक रही हैं। भीड़तंत्र की घटनाएँ सोशल मीडिया द्वारा अफवाह फैलाने से हो रही हैं। समाज को भी ऐसे माध्यमों तथा घटना में शामिल परिवारों का अलिखित, अघोषित बहिष्कार करना चाहिए। इस प्रकार हमारी जिम्मेदारी है कि हम ऐसे संवेदनशील विषय पर समझदारी से निर्णय लें। जब तक हमारे अंदर संवेदना, सहिष्णुता, समझदारी एवं जिम्मेदारी का भाव नहीं आएगा, तब तक ऐसी घटनाओं को रोका नहीं जा सकता है। ❑

जिधर भी देखते हैं, भगवान दिखता है। आगे भी, पीछे भी, जिधर चलते हैं, वह साथ ही चलता है। बॉडीगार्ड की तरह, पायलट की तरह उसकी उपस्थिति हर घड़ी परिलक्षित होती रहती है। समुद्र तो बूँद नहीं बन सकता, पर बूँद के समुद्र बन जाने की अनुभूति में अब कोई संदेह नहीं रह गया है। उसकी उपस्थिति में न निश्चिंतता की कमी है, न निर्भयता की।

—परमपूज्य गुरुदेव

आत्मिक प्रगति के सरल सामान्य सूत्र

अध्यात्म इस जीवन का सारतत्त्व है। संसार-समाज की तमाम उपलब्धियों के बाद भी जीवन में जो खाली स्थान रह जाता है, उसकी पूर्ति अध्यात्म करता है। अपने जीवन के परम विकास की ओर अग्रसर चेतना का यह सहज सोपान है। प्रकृति के नियमों के अंतर्गत सृष्टि का हर घटक, हर प्राणी पूर्णता के पथ पर अग्रसर है, लेकिन मनुष्य को ही यह विशेषता मिली है कि वह अपने सचेतन प्रयास के आधार पर आत्मिक प्रगति को त्वरित कर सकता है।

युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव ने युगानुकूल परिस्थितियों को देखते हुए उपासना, साधना एवं आराधना के रूप में इसके त्रिविध सूत्र दिए, जिसकी त्रिवेणी में अवगाहन कर कोई भी अध्यात्म लाभ प्राप्त कर सकता है। प्रस्तुत हैं यहाँ इस पथ के कुछ व्यावहारिक सूत्र, जो अध्यात्म पथ की यात्रा को और सरल-सहज एवं प्रभावी बनाते हैं।

सबसे पहले जीवन से शिकायत करना बंद करें। हम जो हैं, वह हमारे पूर्वकर्मों का फल है और जो हम आगे बनना चाहते हैं, उसके लिए भी हमें अपने वर्तमान के कर्मों को सुधारना होगा। अपने लक्ष्य के अनुरूप अपने चिंतन, कर्म व भावों का निर्धारण करना होगा। यदि वर्तमान हमें संतोषजनक नहीं लगता, इसमें तमाम न्यूनताएँ व कमियाँ प्रतीत होती हैं तो इसका मूल्यांकन करते हुए इसके जड़मूल में जाएँ, अपने सत्य को खोजें व वहीं से अपनी यात्रा को प्रारंभ करें। अपनी प्रकृति, स्वभाव के अनुकूल निश्चित पथ का अनुगम करें।

सबकी प्रकृति अलग होती है, कोई कर्मप्रधान होता है, तो कोई ज्ञानप्रधान और कोई भावप्रधान होता है तो कोई ध्यानप्रधान तथा कोई इनमें से भिन्न-भिन्न भावों का मिश्रण। सद्गुरु के सान्निध्य में, उनके जीवन से निस्सृत प्रकाश के आलोक में जीवन की यह राह सूझती है, प्रकाशित होती है। जितना सत्य प्रत्यक्ष हो जाए, उस पर अडिग रहें। शनैः-शनैः मार्ग में आगे बढ़ते हुए अधिक प्रकाश प्रकट होने लगेगा। इस तरह क्रमिक रूप में दैनिक रूप में संयम, स्वाध्याय, साधना व सेवा के मार्ग पर चलते हुए आत्मिक विकास के पथ पर उत्तरोत्तर बढ़ते जाएँ।

इसमें अपने आहार-विहार पर विशेष ध्यान रखें; क्योंकि आहार का मन पर सीधा प्रभाव पड़ता है। कहा भी गया है कि 'जैसा अन्न वैसा मन'। इसलिए अपने श्रम का, ईमानदारी का अर्जित अन्न ग्रहण करें। इंद्रियों से प्राप्त संवेदनों पर भी ध्यान दें; क्योंकि ये सूक्ष्म आहार के रूप में मन की प्रकृति का निर्धारण करते हैं। आहार यथासंभव सात्त्विक हो, तो बेहतर। राजसिक भी है तो उसे अपनी आवश्यकतानुसार ही ग्रहण करें। तामसिक आहार से बचें।

इस संदर्भ में संग-साथ का विशेष ध्यान दें; क्योंकि कुसंग इंद्रियों की उत्तेजना के साथ विचारों को भी दूषित करता है और व्यवहार में भी अनावश्यक विचलन एवं तनाव का कारण बनता है। इस संदर्भ में बरती गई सावधानी आत्मिक प्रगति एवं आत्मिक शांति की दिशा में एक बड़ा कदम साबित होती है। इस संदर्भ में बरती गई लापरवाही व अति आत्मविश्वास अपनी परिणति में घातक हो सकता है, जिसका शिकार कितने सारे नए साधकों को पग-पग पर होते देखा जा सकता है।

यहाँ पर अपने आध्यात्मिक लक्ष्य के अनुकूल अनुशासित दिनचर्या का महत्त्व स्पष्ट होता है। इसके साथ अपने कर्त्तव्यपालन पर विशेष ध्यान दें। ऐसा कोई अध्यात्म पथ नहीं, जो व्यक्ति या समाज को कर्त्तव्य से विमुख होना सिखाता हो। स्वाभाविक रूप में विकसित वैराग्य के शिखर पर गृह-त्याग, संसार-त्याग की बात दूसरी, जो एक विरल घटना रहती है, सामान्यतया व्यक्ति धीरे-धीरे वैराग्य को प्राप्त होता है।

अपने कर्त्तव्य कर्मों का निष्ठा के साथ पालन करते हुए, जीवन के संघर्षों के बीच तपता हुआ क्रमिक रूप में ही वैराग्य पनपता है, विवेक-दृष्टि जाग्रत होती है। जब तक यह परिपक्व न हो, पूर्ण रूप से सांसारिक कर्त्तव्यों का त्याग संभव नहीं होता। श्मशान वैराग्य के चलते कितने सारे लोगों को ऐसा करते देखा जाता है, लेकिन देर-सबेर इनको अपनी भूल समझ आ जाती है।

अपने परिवेश के साथ सामंजस्य इसी का एक महत्त्वपूर्ण घटक है। अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए यह सहज स्वाभाविक रूप से संभव होता है। हमारे हर कार्य प्रायः स्वार्थप्रेरित, अहंकेंद्रित होते हैं। जीवन के इस संकुचन से बाहर निकलने का शुभारंभ हम एक ऐसे कर्म से कर सकते हैं, जिसमें अपना कोई स्वार्थ न हो, जो विशुद्ध रूप में परमार्थभाव से युक्त हो। यह अपने गली-मुहल्ले में सफाई से लेकर किसी जरूरतमंद की सेवा-शुश्रूषा व लोकहित के किसी सेवाकार्य के रूप में हो सकता है।

गायत्री परिवार में समयदान, अंशदान के रूप में ऐसा संयोग सहज रूप में उपलब्ध रहता है। अपने सत्य, अपने इष्ट-आराध्य एवं सद्गुरु के प्रति उत्कट प्रेम अध्यात्म पथ का केंद्रीय तत्त्व है। शाब्दिक रूप में ये अलग-अलग तत्त्व प्रतीत हो सकते हैं, किंतु तत्त्वतः ये सब एक ही सत्य की भिन्न-भिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं। इस आधार पर साधना-अराधना का न्यूनतम कार्यक्रम सहज रूप में संपन्न हो जाता है। इसके साथ उपासना का सघन पुट अध्यात्म पथ को एक नया आयाम दे जाता है।

इसके लिए निश्चित स्थान व समय को निर्धारित किया जा सकता है। बाहर का एकांत, शांत एवं सात्त्विक वातावरण इसमें बहुत सहायक रहता है। यदि ऐसा कुछ उपलब्ध न हो तो आंतरिक एकांत का अभ्यास किया जा सकता है। गायत्री महामंत्र के जप के साथ उगते हुए सूर्य—सविता का ध्यान, उसके मध्य अपनी भावना-श्रद्धा के अनुरूप अपने गुरु, इष्ट की छवि का निर्धारण उपासना के प्रयोजन को पूरा करता है। उदित होते सूर्य के प्रकाश में अपने स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण शरीर के परिष्कार तथा सशक्तीकरण का भाव और भी ज्यादा प्रगाढ़ किया जाता है।

इसके बढ़ते क्रम में ध्यान की अगली कक्षाओं में पंचकोशों व षट्चक्रों पर ध्यान-धारणा के प्रयोग किए जा सकते हैं। इस सबके साथ मन की चाल को भी समझें। सब कुछ इतनी सरलता से हो जाएगा, आवश्यक नहीं। सतत जागरूकता ही इसका एकमात्र उपाय है। चौबीस घंटों की सजग साधना ही कुछ मिनटों के ध्यान व उपासना को प्रगाढ़ एवं प्रभावशाली बनाती है। इस तरह उपासना-साधना व आराधना का सम्यक निर्वाह जीवन को आत्मिक प्रगति के राजमार्ग पर पूर्णता के चरम लक्ष्य की ओर गतिशील करता है। ❑

आचार्य कांभोज की पुत्री निश्चला विदुषी एवं सुसंस्कारित थी। उसके रूप की चर्चा दूर-दूर तक थी। राज्य का राजकुमार भूरिश्रवा उसका हाथ माँगने पहुँचा। राजकुमार के प्रणय-प्रस्ताव पर निश्चला ने उत्तर दिया—"राजकुमार! मैं परिश्रम से उपार्जित धन से जीवन व्यतीत करने में विश्वास रखती हूँ। प्रजा से लिया गया धन राजकोश में रहे, पर सादा जीवन व्यतीत करें, तभी मैं आपकी जीवनसंगिनी बन पाऊँगी।"

भूरिश्रवा भी धर्मनिष्ठ राजकुमार था। उसने निश्चला का यह प्रस्ताव तुरंत स्वीकार कर लिया। दोनों ने राजमहल का त्याग कर झोंपड़ी में रहना अंगीकार किया। राजकुमार राजकार्य को एक देवप्रदत्त दायित्व की तरह निभाते और दोनों पति-पत्नी स्व-अर्जित धन से घर का कार्य चलाते। ऐसा जीवन जीने से दोनों की कीर्ति इतनी बढ़ी कि वे आज भी याद किए जाते हैं।

आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसार भौतिक जगत् में सबसे छोटा तत्त्व परमाणु है। प्राचीन भारतीय मनीषी कालक्रम का वर्णन करते समय काल की सबसे छोटी इकाई भी परमाणु को ही मानते थे। वायु पुराण में विभिन्न काल खंडों के दिए गए विवरण के अनुसार दो परमाणु मिलकर एक अणु का निर्माण करते हैं और तीन अणुओं के मिलने से एक त्रसरेणु बनता है। तीन त्रसरेणुओं से एक त्रुटि, 100 त्रुटियों से एक वैध, तीन वैध से एक लव तथा तीन लव से एक निमेष (क्षण) बनता है।

इसी प्रकार 3 निमेष से एक काष्ठा, 15 काष्ठा से एक लघु, 15 लघु से 1 नाड़िका, 2 नाड़िका से एक मुहूर्त, 6 नाड़िका से एक प्रहर तथा आठ प्रहर का एक दिन और रात बनते हैं। दिन और रात्रि की गणना साठ घड़ी में भी की जाती है। तदनुसार प्रचलित एक घंटे को ढाई घड़ी के बराबर कहा जा सकता है। एक मास में 15-15 दिन के दो पक्ष होते हैं—शुक्ल पक्ष एवं कृष्ण पक्ष। सूर्य की दिशा की दृष्टि से वर्ष में भी छह-छह माह के दो-दो पक्ष होते हैं—उत्तरायण तथा दक्षिणायण।

वैदिक काल में 12 महीनों के नाम ऋतुओं के आधार पर होते थे। बाद में महीनों के नाम नक्षत्रों के आधार पर रख दिए गए—चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ और फाल्गुन। इसी प्रकार सप्ताहों के नाम ग्रहों के नाम पर रखे गए हैं—रवि, सोम (चंद्रमा), मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि।

प्राचीन ग्रंथों में मानव वर्ष और दिव्य वर्ष में अंतर किया गया है। मानव वर्ष, मनुष्यों का वर्ष है, जो सामान्यत: 360 दिनों का होता है। आवश्यकतानुसार उसमें घटत-बढ़त होती रहती है। दिव्य वर्ष देवताओं का वर्ष है। वहाँ छह मास का दिन और छह मास की रात होती है। मनुष्यों के 360 वर्ष मिलकर देवताओं का एक दिव्य वर्ष बनता है। मानव की सामान्य आयु 100 वर्ष मानी गई है। इसके विपरीत देवताओं की आयु 1000 दिव्य वर्षों की मानी गई है। इस प्रकार देवताओं की आयु मनुष्यों के 360 × 1000 = 360000 वर्ष के बराबर होती है।

हमारे यहाँ सबसे पुराना संवत्सर सृष्टि संवत्सर है, जिसका प्रारंभ सृष्टि के निर्माण से हुआ और सृष्टि के अंत के साथ ही इस संवत्सर का भी अंत होगा। यही सृष्टि संवत्सर, एक कल्प या ब्रह्मा का एक दिन माना गया है। सृष्टि संवत्सर की पूरी गणना प्राचीन ग्रंथों में दी हुई है। उसके अनुसार सन् 2022 में सृष्टि और उसके साथ सूर्य को बने 1960853922 मानव वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। सृष्टि की कुल आयु 4320000000 वर्ष मानी गई है। इसमें से वर्तमान आयु निकालकर सृष्टि की शेष आयु 2359146078 वर्ष है। तदुपरांत महाप्रलय निश्चित है।

इसके बाद ब्रह्मा की रात्रि प्रारंभ होगी। यह रात्रि भी 4320000000 मानव वर्षों की होगी, जिसे प्रलय काल कहा गया है। इसके उपरांत सृष्टि के पुनर्निमाण के साथ ब्रह्मा का नया दिन शुरू होगा। इस प्रकार ब्रह्मा की एक अहोरात्र 8640000000 मानव वर्षों की होती है। ब्रह्मा को परमेष्ठी मंडल की भी संज्ञा दी गई है, जिसके चारों ओर सूर्य चक्कर लगाता है। ब्रह्मा के अहोरात्र को 360 से गुणा करने पर एक ब्रह्मा वर्ष बनता है तथा उसे 100 से गुणा करने पर 8640000000 × 360 × 100 ब्राह्म युग होता है। इसी प्रकार कालगणना का क्रम आगे भी चलता है।

सृष्टि के संपूर्ण जीवन को भी अनेक कालखंडों में बाँटा हुआ है। इसके अनुसार कुल 15 मन्वंतर होते हैं, जिनमें से प्रत्येक मन्वंतर का अधिपति एक मनु होता है। 14 मन्वंतरों में प्रत्येक में 71 चतुर्युगी (कृतयुग या सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग तथा कलियुग) होती हैं। 15वें मन्वंतर में केवल छह चतुर्युगी होंगी। चतुर्युगी को महायुग भी कहा गया है। गणना के अनुसार सृष्टि संवत्सर के अब तक 6 मन्वंतर निकल चुके हैं और अब सातवाँ मन्वंतर चल रहा है। वैवस्वत मनु से प्रारंभ होने के कारण इसे वैवस्वत मन्वंतर कहते हैं। इस सातवें मन्वंतर, वैवस्वत

मन्वंतर के भी 27 चतुर्युग व्यतीत हो चुके हैं, तथा 28वें चतुर्युग के भी तीन युग निकल चुके हैं और चौथा युग कलियुग चल रहा है।

एक चतुर्युगी में कुल 4320000 वर्ष होते हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है—कृतयुग—1728000 वर्ष, त्रेतायुग—1296000 वर्ष, द्वापरयुग—864000 वर्ष, कलियुग—432000 वर्ष।

इस गणना के अनुसार प्रत्येक मन्वंतर में 306720000 वर्ष होते हैं तथा पंद्रहवें मन्वंतर में केवल 6 चतुर्युगी होने के कारण 4320000 गुणा 6 = 25920000 वर्ष होते हैं। इनका कुल योग 306720000 × 14 + 25920000 = 4320000000 वर्ष सृष्टि की कुल आयु को तथा ब्रह्मा के एक दिन या एक कल्प को प्रकट करते हैं।

एक अन्य पौराणिक मान्यता के अनुसार मन्वन्तर केवल 14 होते हैं, 15 नहीं। इस मान्यता के अनुसार प्रत्येक युग के प्रारंभ और अंत में उनका दसवाँ भाग क्रमशः संध्याकाल और संध्यांश होता है। इस प्रकार 15वें मन्वंतर की छह चतुर्युगी इन्हीं 14 में लगभग पूरी हो जाती हैं।

पौराणिक मान्यता से मुक्त रहते हुए प्रसिद्ध विद्वान आर्यभट ने मन्वंतर तो 14 ही माने हैं, परंतु उनके अनुसार प्रत्येक मन्वंतर में 71 के स्थान पर 72 महायुग होते हैं तथा इनमें सभी युग समान कालावधि के होते हैं। आर्यभट इस अवधि को 1080,000 वर्ष ही मानते हैं। इस प्रकार महायुग की संपूर्ण अवधि (1080000 गुणा 4= 4320000 वर्ष) के बारे में आर्यभट का कोई मतभेद नहीं है।

चतुर्युगी में सबसे कम अवधि कलियुग की है। इससे दो गुना अवधि द्वापर की, तीन गुना त्रेता की तथा चार गुना कृतयुग की होती है। वर्तमान कलियुग का प्रारंभ युधिष्ठिर के अवसान के समय में माना जाता है। इसी समय से कलिसंवत् भी प्रारंभ हुआ। यह घटना चैत्र शुक्ल प्रतिपदा की मानी जाती है। ब्रह्मांड पुराण में भी इसका उल्लेख है।

एक पौराणिक कथा के अनुसार महाप्रलय के उपरांत चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को ही ब्रह्मा ने नई सृष्टि के लिए आदेश दिया। कलियुग को चार चरणों में विभाजित किया जाता है। प्रत्येक चरण 1,08,000 वर्ष का है। निश्चित ही यह अवधि बहुत लंबी लगती है, मगर सृष्टि नियंता की दृष्टि से यह अवधि अत्यंत अल्प है।

पौराणिक मान्यताओं के अनुसार इन अलग-अलग युगों में ईश्वर ने भक्तों की रक्षा और दुष्टों के विनाश के लिए अलग-अलग अवतार लिए। कृतयुग में शंखासुर के विनाश के लिए मत्स्यावतार हुआ, समुद्रमंथन में देवताओं की सहायता के लिए कच्छप अवतार हुआ, हिरण्याक्ष के वध के लिए वाराह अवतार हुआ तथा भक्त प्रह्लाद की रक्षा और हिरण्यकशिपु के संहार के लिए ईश्वर ने नृसिंह रूप धारण किया। त्रेतायुग में ईश्वर ने वामनावतार धारण करके राजा बलि से पृथ्वी का दान लेकर उन्हें पाताल का राज्य दिया, तथा रावण का वध करने के लिए उन्होंने राम के रूप में धरती पर जन्म लिया। उन्होंने द्वापर में कंस तथा अन्य दुर्जनों का वध करने के लिए कृष्ण का अवतार लिया।

पौराणिक मान्यता के अनुसार कलियुग में भी ईश्वर अवतार लेंगे। वह कल्कि अवतार होगा, जो कलियुग के उत्तरार्द्ध में उसकी समाप्ति से केवल 891 वर्ष पूर्व होगा। इस महायुग में सतयुग का प्रारंभ कार्तिक शुक्ल नवमी बुधवार को, त्रेतायुग का प्रारंभ वैशाख शुक्ल तृतीया सोमवार को, द्वापर का प्रारंभ माघ कृष्ण प्रतिपदा को तथा कलियुग का प्रारंभ भाद्रपद कृष्णा त्रयोदशी को माना जाता है। पौराणिक मान्यता के अनुसार रामायण की घटना त्रेतायुग के उत्तरार्द्ध में तथा महाभारत की घटना द्वापर के उत्तरार्द्ध में घटी।

सच्चे साहित्य का निर्माण एकांत चिंतन और एकांत साधना में होता है।

प्रत्येक मन्वंतर में मनु के अतिरिक्त, मनुपुत्र, मनुपुत्रियाँ, सप्तर्षि, देवता तथा इंद्र आदि होते हैं, जो अपना-अपना निर्धारित कार्य संपन्न करते हैं। मनु अपने मन्वंतर का स्वामी और संचालक होता है। मनुपुत्र उसके सहयोगी होते हैं, मनुपुत्रियाँ भौतिक और आध्यात्मिक शक्तियों की स्वामिनी होती हैं, इंद्र पर सुरक्षा का दायित्व होता है तथा सप्तर्षि एक मन्वंतर में प्राप्त ज्ञान को सुरक्षित रखकर उसे अगले मन्वंतर में हस्तांतरित करते हैं। सामाजिक व्यवस्था के संचालन और इनके मार्गदर्शन का दायित्व भी सप्तर्षियों का है। इन सबसे ऊपर विष्णु, सृष्टि के पालक का कार्य करते हैं।

इस प्रकार वैदिक कालगणना अत्यंत वैज्ञानिक है। इसको आधार मानकर सृष्टि एवं मानव जीवन का कालक्रम एवं उसके विकास की गणना की जा सकती है। ❑

(श्रीमद्भगवद्गीता के श्रद्धात्रयविभागयोग नामक सत्रहवें अध्याय की पहली किस्त)

[श्रीमद्भगवद्गीता के सोलहवें अध्याय के चौबीसवें श्लोक की विवेचना विगत किस्त में करने के साथ ही यह अध्याय समाप्त हुआ। दैवासुरसम्पद्विभागयोग नामक इस अध्याय का यह नाम इसलिए रखा गया क्योंकि इस अध्याय में उन दोनों संपत्तियों का वर्णन हुआ है, जो परस्पर एकदूसरे से विरुद्ध हैं अर्थात दैवी संपदा आत्मकल्याण के पथ को प्रशस्त करने वाली है और आसुरी संपदा अधोगति कराने वाली और नरकों में गिराने वाली है। जो मनुष्य इन दोनों संपत्तियों को सम्यक दृष्टि से समझ लेता है, वह फिर आसुरी संपत्ति का त्याग कर दैवी संपदा के अर्जन के लिए ही प्रयत्न करता है।

इस अध्याय के प्रारंभ में श्रीभगवान प्रथम तीन श्लोकों में दैवी संपत्ति या दैवी वृत्ति से युक्त मनुष्यों के लक्षण गिनाते हैं। वे कहते हैं कि निर्भयता, अंतःकरण की शुद्धि, दृढ़ता, दान, इंद्रियजयता, यज्ञ, स्वाध्याय, आर्जव, तप, अहिंसा, सत्यभाषण, अक्रोध, अकाम, दूसरों की निंदा न करना, प्राणिमात्र के प्रति दया का भाव रखना, अंतःकरण की कोमलता, कर्त्तव्य करने में लज्जा, तेज, क्षमा, धृति, शौच, वैर का अभाव, मान की कामना का न होना—ये सभी दैवी संपदा से युक्त मनुष्यों के लक्षण हैं। इन्हीं लक्षणों को आगे बढ़ाते हुए वे कहते हैं कि आसुरी वृत्ति वाले मनुष्य वृत्ति-निवृत्ति का भेद नहीं जानते, उनका चिंतन भौतिकवादी होता है, वे भोगवादी प्रवृत्ति में लिप्त होते हैं। इसलिए वे आशा की सैकड़ों फाँसियों में निरंतर बँधे रहते हैं और स्वयं को ही सर्वसमर्थ मानते हैं। ऐसे मनुष्य फिर भयंकर नरकों में गिरते हैं, ईश्वर के प्रति द्वेष-दृष्टि रखते हैं और वे जन्म-जन्मांतरों में आसुरी योनि को ही प्राप्त होते हैं। काम, क्रोध और लोभ ये तीन प्रकार के नरक के द्वार हैं और इनसे रहित होने वाला मनुष्य ही आत्मकल्याण के पथ को प्राप्त होता है। इसलिए श्रीभगवान इस अध्याय का अंत अर्जुन को इसी पथ पर चलने की प्रेरणा देकर कहते हैं।]

इसके बाद श्रद्धात्रयविभागयोग नामक सत्रहवें अध्याय का प्रारंभ अर्जुन की जिज्ञासा के साथ होता है—

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः ॥1 ॥

शब्दविग्रह—ये, शास्त्रविधिम्, उत्सृज्य, यजन्ते, श्रद्धया, अन्विताः, तेषाम्, निष्ठा, तु, का, कृष्ण, सत्त्वम्, आहो, रजः, तमः।

शब्दार्थ—हे कृष्ण (**कृष्ण**), जो मनुष्य (**ये**), शास्त्र विधि को (**शास्त्रविधिम्**), त्यागकर (**उत्सृज्य**), श्रद्धा से (**श्रद्धया**), युक्त हुए (**अन्विताः**), देवादि का पूजन करते हैं (**यजन्ते**), उनकी (**तेषाम्**), स्थिति (**निष्ठा**), फिर (**तु**), कौन-सी है ? (**का**), सात्त्विकी है (**सत्त्वम्**), अथवा (**आहो**), राजसी (किंवा) (**रजः**), तामसी (**तमः**)।

अर्थात अर्जुन बोले—हे कृष्ण ! जो मनुष्य शास्त्र विधि का त्याग करके श्रद्धापूर्वक पूजन करते हैं, उनकी निष्ठा फिर कौन-सी है ? सात्त्विकी है या राजसी-तामसी ? विगत अध्याय के अंत में श्रीभगवान ने अर्जुन से कहा था कि शास्त्रीय विधि का त्याग करके मनमाने ढंग से आचरण करने वाले न तो सुख प्राप्त कर पाते हैं, न सिद्धि और न ही परम गति।

ऐसा सुनकर स्वाभाविक रूप से प्रश्न उभरता है कि शास्त्र विधि को सम्यक दृष्टि से जानने वाले तो कम ही हैं। अनेकों लोग तो बिना उसको सही प्रकार से जाने, मात्र

श्रद्धापूर्वक पूजा-उपासना करते हैं। यदि शास्त्रविधि के जानने को आधार बनाया जाए तो उनका पूजन आसुरी वृत्ति का हुआ और यदि श्रद्धा को आधार बनाएँगे तो उनका पूजन दैवी वृत्ति का हुआ। इसीलिए अर्जुन एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण प्रश्न भगवान श्रीकृष्ण से कहते हैं कि जिन मनुष्यों की पूजा-उपासना का क्रम शास्त्रीय रीति से नहीं है, परंतु श्रद्धा बरकरार है तो वह निष्ठा किस प्रकार की है।

एक तरह से उनका यह प्रश्न संपूर्ण मानवता के कल्याण के लिए है। अर्जुन जिस काल में इस प्रश्न को पूछ रहे थे, उस समय तो तब भी शास्त्रों का अनुशीलन करने वाले बहुत से विज्ञजन उपस्थित थे। स्वयं अर्जुन शास्त्रों के प्रकांड ज्ञाता थे और फिर शास्त्रों की समुचित व्याख्या करने वाले अनेक ऋषि-मुनि भी उस समय में उपलब्ध थे। परंतु उनके सम्मुख यह प्रश्न तत्कालीन समाज से ज्यादा आज के युग के परिप्रेक्ष्य में अधिक था।

अर्जुन ने महसूस किया कि श्रीभगवान ने विगत अध्याय में दैवी प्रवृत्ति के लोगों के लिए तो तीन ही श्लोक बोले हैं। परंतु आसुरी प्रवृत्ति के लोगों के लिए लगभग पूरा अध्याय ही कहा है; क्योंकि भगवान श्रीकृष्ण को भान था कि आने वाले समय में कलियुग के प्रभाव से आसुरी वृत्ति वाले मनुष्य ज्यादा होंगे।

उसी समय का पूर्वानुमान लगाते हुए अर्जुन इस प्रश्न को पूछते हैं; क्योंकि उन्हें लग रहा है कि भविष्य में अर्थात वर्तमान समय में तो शास्त्रज्ञ भी कम ही होंगे, फिर उन शास्त्रों की समुचित व्याख्या करने वाले कम होंगे और यदि हुए भी तो उस पथ पर चलने का भाव रखने वाले, उस पर अहर्निश चिंतन-मनन करने वाले लोग कम ही होंगे तब भी कुछ लोग होंगे, जो श्रद्धापूर्वक पूजन करेंगे तो उनकी निष्ठा किस तरह की मानी जाए।

इस क्रम में वे प्रश्न पूछते हैं कि '**सत्त्वमाहो रजस्तमः**' उनकी निष्ठा सतोगुण वाली है अर्थात दैवी संपदा वाली है या रजो-तमोगुण वाली है अर्थात आसुरी वृत्ति वाली है? ऐसा कहने के पीछे का कारण यह है कि श्रीभगवान पहले ही अर्जुन को बता चुके हैं कि सतोगुण की प्रचुरता वाले लोग दैवी संपत्ति से युक्त होते हैं और रजोगुण-तमोगुण से युक्त व्यक्तित्व आसुरी वृत्ति से युक्त होते हैं।

इन्हीं संपत्तियों के अनुसार उनकी निष्ठा होती है और उसी के अनुसार उनके भाव, आचरण और विचार होते हैं। मनुष्य के जीवन और उसकी जीवनोपरांत गति का निर्धारण उसकी निष्ठा के अनुसार ही होता है। यही कारण है कि अर्जुन यहाँ भगवान श्रीकृष्ण से यह पूछते हैं कि उनका बाह्य आचरण तो कुछ भी हो सकता है, परंतु उनकी निष्ठा को कैसा माना जाए?

निष्ठा ही मनुष्य के व्यक्तित्व का आधार है। जैसी निष्ठा होती है, वैसे ही कर्म होते हैं। तामसी निष्ठा वाले शुभ कर्म भी करेंगे तो वो भी अशुभ ही परिणाम लेकर आएगा परंतु सतोगुणी निष्ठा वालों के कर्म तो शुभ ही परिणाम लाएँगे। इसी जिज्ञासा की शांति के लिए अर्जुन श्रीभगवान से यह प्रश्न पूछते हैं, जो एक तरह से संपूर्ण मनुष्य जाति का ही प्रश्न है। (क्रमशः)

यह आपद्धर्म है। इसमें आप लोग एक काम करना कि अपनी व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं को जितना कम कर सकते हों कम करना, ताकि उसी सीमा में आप ब्राह्मण होते चले जाएँ। संत हो जाएँ। जिस सीमा में आप ब्राह्मण हैं, संत हैं, उसी सीमा के हिसाब से, उसी मर्यादा के हिसाब से आपको भगवान की कृपा मिलेगी। देवताओं की, सिद्धपुरुषों की सहायता मिलेगी। इस जमाने में युग निर्माण जैसे महान कार्य के लिए, जलती हुई आग को बुझाने के लिए और उज्ज्वल भविष्य की संभावनाओं को बढ़ाने के लिए महाकाल ने आपसे समय माँगा है। यदि आप आध्यात्मिक महत्त्वाकांक्षाओं में अपने मन को लगा सकें तो आपको शक्ति भी मिलेगी, समय भी बचेगा, पैसा भी बचेगा, अक्ल भी बचेगी, श्रम भी बचेगा।

— पूज्य गुरुदेव

शक्ति संचय एवं इसका सदुपयोग

जीवन में शक्ति एवं बल का महत्त्व सर्वविदित है। इसीलिए शास्त्रों में कहा गया है, बलम् उपास्य अर्थात बल की उपासना करें। जीवन का कोई भी क्षेत्र हो, बलवान ही विजयश्री को प्राप्त होता है, फिर वह चाहे भौतिक क्षेत्र हो या आध्यात्मिक। भारतीय संस्कृति में शक्ति-उपासना के रूप में एक पूरा संप्रदाय एवं साधना विधान खड़ा किया गया है, जिसका हर सनातनधर्मी नवरात्र के दौरान नवदुर्गा के रूप में भावभरा आवाह्न एवं साधना-अनुष्ठान करता है।

दैनिक जीवन में शक्ति-अर्जन के लिए यह जानना आवश्यक है कि हमारी शक्ति का ह्रास कहाँ हो रहा है। प्राय: इसके तीन प्रमुख कारण देखे जाते हैं। सर्वप्रथम है, अत्यधिक भोग-विलास, जिसके चलते इंद्रिय असंयम के कारण जीवन-शक्ति का अतिशय क्षय होता है। दूसरा है, अत्यधिक भाग-दौड़ भरा तनावपूर्ण जीवन। इसमें भी जीवन की शक्ति का बहुत क्षय होता है। तीसरा शक्ति ह्रास का कारण रहता है, अधिक बोलना। बिना प्रयोजन, दिन भर अत्यधिक बोलने से भी ऊर्जा का बहुत क्षय होता है।

एक संयमित, अनुशासित, संतुलित व उद्देश्यपूर्ण जीवन जीते हुए इस स्थिति से उबरा जा सकता है। शक्ति के अर्जन के साथ इसका सदुपयोग भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है, अन्यथा शक्ति का दुरुपयोग व्यक्ति की गरिमा एवं गुरुता को घटा देता है, तथा प्रकारांतर में पुण्य क्षीण होने पर व्यक्ति बलहीन हो जाता है और उसका प्रभाव भी घटता जाता है। शक्ति के दुरुपयोग के साथ व्यक्ति की विवेकबुद्धि कुंद पड़ती जाती है, सत्-असत् के भेद की क्षमता का लोप हो जाता है तथा उसे अपने कर्त्तव्य का बोध नहीं रहता।

ऐसी मदहोशी भरी मन:स्थिति में व्यक्ति द्वारा ऐसे-ऐसे निर्णय, कुकृत्य एवं वीभत्स कर्म हो जाते हैं, जिनके लिए फिर जीवन भर पश्चात्ताप की अग्नि में झुलसना पड़ता है। ज्ञान और तप में रावण किसी से कम नहीं था, किंतु शक्ति के दुरुपयोग के कारण आज भी उसे हेय दृष्टि से देखा जाता है और मर्यादा पुरुषोत्तम राम को शक्ति के सदुपयोग के चलते पूजनीय, वंदनीय एवं अनुकरणीय आदर्श के रूप में पूजा जाता है।

शक्ति के कई स्वरूप हो सकते हैं, जिनका अर्जन कर जीवन को समृद्ध एवं सशक्त बनाया जा सकता है। परमपूज्य गुरुदेव शक्ति संचय के संदर्भ में आठ साधनों की चर्चा करते हैं, यथा—स्वास्थ्य, विद्या, धन, व्यवस्था, संगठन, यश, शौर्य और सत्य। पूज्यवर के शब्दों में इन आठों के सम्मिलन से एक पूर्ण शक्ति बनती है। इन शक्तियों में जिसके पास जितना भाग होगा, वह उतना ही शक्तिवान समझा जाएगा।

शक्ति के सदुपयोग से पहले शक्ति का अर्जन करना पड़ता है। इसके लिए जीवन के विभिन्न स्तर पर शक्ति ह्रास के नानाविध छल-छिद्रों को चिह्नित कर, इनको पाटना पड़ता है व इनको साधते हुए बल को संगृहीत किया जाता है। इसका शुभारंभ दैनिक जीवन में छोटे-छोटे कार्यों के साथ किया जा सकता है। स्थूलशरीर को बलवान बनाने के लिए नित्य कुछ समय स्वास्थ्य संवर्द्धन में नियोजित करना एक समझदारी वाला कदम रहता है। पौष्टिक एवं सात्त्विक आहार के साथ नित्य व्यायाम, योगासन व अन्य शारीरिक गतिविधियों को दिनचर्या में शामिल किया जा सकता है। यह सब व्यक्ति की आयु, क्षमता एवं आवश्यकता के अनुरूप निर्धारित किया जा सकता है।

इंद्रिय संयम इसका मुख्य आधार रहता है व पूरी सजगता के साथ इसका अभ्यास करना होता है। पूज्य गुरुदेव के शब्दों में जिस प्रकार भौतिक भवन को दूसरे रूप में बदलने के लिए उचित संपत्ति की आवश्यकता है, उसी प्रकार इच्छित रूप में अपने भाग्य भवन को बदलने के लिए शक्ति और पुण्यरूपी संपत्ति की आवश्यकता है। तप के द्वारा शक्ति और सेवा के द्वारा पुण्यरूपी संपत्ति प्राप्त होती है। शक्ति के दुरुपयोग से दुर्भाग्य और सदुपयोग से सौभाग्य की प्राप्ति होती है। सांसारिक स्वार्थ को ही सिद्ध करते रहना शक्ति का दुरुपयोग है लेकिन परोपकार करते हुए अपना परमार्थ सिद्ध कर लेना शक्ति का सदुपयोग है।

संसार में आसक्ति रखना शक्ति का दुरुपयोग है और त्याग के द्वारा ज्ञान तथा भक्ति में अनुरक्त होना शक्ति का सदुपयोग है। अहंकारपूर्वक अपनी शक्ति से किसी को गिरा देना शक्ति का दुरुपयोग है और गिरे हुओं को सरल भाव से तत्परतापूर्वक उठा लेना शक्ति का सदुपयोग है। संयम साधना के द्वारा शक्ति का विचार करने के लिए देव संस्कृति में विभिन्न प्रावधान प्रचलित हैं। शक्ति के समुचित सदुपयोग की सिद्धि के लिए ही मंदिरों में, तीर्थस्थलों में, शक्तिपीठों में, वनों-उपवनों में समयानुसार जाने की प्रक्रिया हमारे देश में चली आ रही है। ऐसे पावन स्थानों में अपने अंत:क्षेत्रों के भीतर की सुप्त शक्ति सहज प्रयास से जाग्रत हो जाती है।

इसके साथ नित्य आत्मनिरीक्षण द्वारा हम मूल्यांकन कर सकते हैं कि अर्जित हो रही शक्ति का अपनी क्रिया, चेष्टा, भाव एवं विचार द्वारा सदुपयोग हो रहा है या दुरुपयोग। तदनुरूप अपनी शक्ति की अधिकाधिक वृद्धि व सदुपयोग के प्रयास किए जा सकते हैं। शुद्ध, सात्त्विक आहार एवं विषय संयम से शारीरिक उन्नति सुनिश्चित होती है। सद्व्यवहार एवं सद्गुण विकास के साथ मानसिक विकास होता है और निष्काम सेवा, इष्ट-प्रेम एवं सत्य स्वरूप के ध्यान से आत्मोन्नति होती है। इनके सम्यक निर्वाह से व्यक्तित्व के स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण तीनों आयामों में शक्ति का संचार होने लगता है और जीवन में श्रद्धा, प्रज्ञा एवं निष्ठा जैसे तत्त्वों का विकास होता है।

इस संदर्भ में साधु, संतों एवं आध्यात्मिक महापुरुषों का सत्संग एक निर्णायक कारक रहता है। इनके पावन सान्निध्य में जीवन के सौभाग्य का उदय होता है। यदि इनका संग-साथ सहज रूप में उपलब्ध न हो तो उनकी वाणी के श्रवण अथवा सत्साहित्य के स्वाध्याय के साथ यह आवश्यकता पूरी की जा सकती है। इसके साथ विवेकदृष्टि जाग्रत होती है और जीवन में नैतिक अनुशासन तथा जीवनमूल्यों का महत्त्व समझ आता है।

ऐसे में संयम साधना बाहर से थोपे हुए शासन से अधिक अंत:प्रेरित आत्मानुशासन की प्रक्रिया बन जाती है, जिसका व्यक्ति तमाम प्रतिकूलताओं के बावजूद भी सहर्ष निर्वाह करता है। इस तरह दैनिक जीवन में बल की उपासना करता हुआ व्यक्ति शक्तिसंपन्न होकर आनंद व सत्य के पुण्य क्षेत्र में प्रवेश पाता है। जीवन के हर स्तर पर शक्ति-अर्जन के साथ निर्बलता का अभाव होने लगता है और व्यक्ति जीवन की चुनौतियों को पार करता हुआ भय से निर्भयता, तम से चेतनता और मृत्यु से अमृत के प्रकाशपूर्ण मार्ग पर बढ़ चलता है तथा अर्जित शक्ति का लोकहित में नियोजन करते हुए एक सुखी व सार्थक जीवन जीता है। ❑

फूलों से लदे गुलाब के पौधे को चिंतामग्न देखकर पास में उगे आम के पौधे ने उससे इसका कारण पूछा। गुलाब ने कहा—"आज तो मैं फूलों से लदा हूँ, पर वह पतझड़ दूर नहीं, जब मुझ पर एक पत्ता भी शेष न होगा। आज जो मेरे सौंदर्य की प्रशंसा करते नहीं थकते, कल वे मेरी ओर देखेंगे भी नहीं। क्या यह कम चिंता की बात है?" इतना कहकर गुलाब के पौधे ने हताशा से सिर झुका लिया।

आम का पौधा बोला—"मित्र! कल के पतझड़ की चिंता करने के बजाय तुम उसके बाद पुन: लौटने वाले वसंत के विषय में क्यों नहीं सोचते। मुझे देखो, अभी मुझे वृक्ष बनने में वर्षों लगेंगे, पर मैं उसी आशा में निरंतर मुदित बना रहता हूँ।" जीवन में मात्र निराशा पर ध्यान देने से कोई प्रगति हाथ नहीं लगती।

भावों का अर्पण है प्रार्थना

प्रार्थना याचना नहीं, वरन याचना का अभाव है। इसमें जीवन और जीवन देने वाले प्रभु से कोई शिकायत नहीं, बल्कि जीवन की सहज व प्रसन्नतापूर्वक, पूर्ण स्वीकारोक्ति है। कई बार हम कहते हैं कि हमारी प्रार्थना असफल हो गई; क्योंकि हमें मनचाहा नहीं मिला। हमारा अनचाहा हुआ। सच तो यह है कि हमारी प्रार्थना तो उसी क्षण असफल हो गई, जब हमने कुछ माँग लिया, जब हमने अपनी चाहत सामने रखी। जो परमात्मा के द्वार पर माँगता है, वह खाली हाथ ही लौटता है। जो वहाँ बिना किसी माँग के खाली हाथ खड़ा हो जाता है, केवल वही भरा हुआ लौटता है।

भारतीय संस्कृति प्रार्थनामूलक है। समूचा ऋग्वेद प्रार्थनामूलक है, यजुर्वेद, साम, अथर्ववेद और उपनिषद् प्रार्थना मंत्र हैं। प्रार्थना हृदय-से-हृदय का संवाद है, अंतर्भाव का निवेदन है। शून्य से विराट की वार्त्ता है। प्रार्थना विचाररहित वाक्य है। निर्विचार वाणी है। दयतंत्री का स्वर है। मौन का संगीत है। अकिंचनता की पुकार है, निर्धूम अग्नि है और आकांक्षारहित माँग है। प्रार्थना एक विशिष्ट चित्तदशा है। यह लघुता से व्यापकता की ओर नेहनिमंत्रण है। यह रिक्त चित्त की पुकार है। यह अनंत के स्वागत और अभिनंदन की तत्परता है।

ऊर्जा बड़े ऊर्जा पिंड से नीचे की ओर बहती है। विज्ञान के नियमानुसार ऊर्जा का निम्नतलयी प्रवाह तब तक चलता है, जब तक दोनों ऊर्जा पिंडों का ऊर्जातल समान नहीं हो जाता है। इसके लिए दोनों ऊर्जा पिंडों के मध्य योजकता चाहिए, लेकिन प्रार्थना की योजकता से प्राणी की निम्न ऊर्जा परम ऊर्जा के ही बराबर नहीं हो जाती, वस्तुत: एक ही हो जाती है। भक्त भगवान हो जाते हैं, ब्रह्मविद् ब्रह्म हो जाते हैं।

प्रार्थना भी विराट अस्तित्व से भावपूर्ण योजकता का संबंध है। प्रार्थना अमावस्या के पूर्णिमा हो जाने की अभीप्सा है—'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की प्यास है। प्रार्थना इकाई से अनंत की योजकता है। सभी प्राणी ऊर्जा के निम्न तल पर स्थित हैं। अस्तित्व परम ऊर्जा है। प्रार्थना परम ऊर्जा का प्रवाह प्राप्त करने का प्राचीन विज्ञान है।

प्रार्थना तर्कातीत अनुभूति है। प्रार्थना के पूर्व तर्क उठते हैं। वाद-प्रतिवाद-संवाद का क्रिया-व्यापार चलता है, फिर प्रतीति आती है। प्रतीति के बाद अनुभूति आती है। अनुभूति अपना काम करती है। अनुभूति से दर्शन आता है। दर्शन की शक्ति द्रष्टा बनाती है। द्रष्टा निर्विचार होता है। उसके चित्त में शून्य उभरता है। ऋचाएँ इसी शून्य को भरने के लिए तत्पर होती हैं। चित्त का शून्य विराट से भरता है। प्रार्थनाएँ फूटती हैं, स्तुतियाँ उपजती हैं।

वैदिक ऋचाएँ द्रष्टा ऋषियों के अनुभूतिजन्य सत्य का काव्य सृजन है। विज्ञान और दर्शन में प्रार्थना की गुंजाइश नहीं होती है। प्रार्थना के लिए दो की जरूरत होती है, एक प्रार्थना और दूसरा आराध्य। दार्शनिक और वैज्ञानिक प्रार्थना के भाव वाले नहीं होते। वे सृष्टि- रहस्यों के खोजी होते हैं। उनका कोई आराध्य नहीं होता है, लेकिन भारतीय दर्शन और विज्ञान परंपरा के ऋषि प्रार्थना भाव से युक्त होते हैं। इसीलिए पश्चिम के तमाम विद्वान भारतीय दर्शन पर 'भाववादी' होने का आरोप लगाते हैं।

वे भारतीय दर्शन के यथार्थवाद, भौतिकवादी तत्त्वों पर विचार नहीं करते हैं। भावजगत् की अनुभूति भी यथार्थ का ही भाग है। भौतिकवाद में माँ केवल स्त्री है। भावजगत् में यही स्त्री पूज्य और आराध्य माँ है। माँ जननी है, पोषक है, अत: दिव्य है और देवी भी है। भारत की प्रार्थना संस्कृति का विकास कोरे भाव से ही नहीं हुआ। वेद और उपनिषद् विज्ञान व दर्शन से आप्लावित हैं, लेकिन उनमें भी प्रार्थनाएँ हैं।

ईशावास्योपनिषद् में दर्शन है। पहले 14 मंत्रों तक कोई प्रार्थना नहीं है। सभी मंत्र दर्शन से ओत-प्रोत हैं। 14 मंत्रों तक की यात्रा, दृष्टि को दार्शनिक बनाती है। चित्त निर्विचार होता है, निष्कलुष होता है, निष्कंप होता है और एक विराट शून्य का जन्म होता है। सत्य की दीप्ति होती है। सत्य वाक् बनता है। वाक् प्रार्थना बनता है। ऋषि पूषण, सूर्य, वायु और अग्नि जैसे देवों से प्रार्थनाएँ करते हैं। इन

प्रार्थनाओं में सत्य प्राप्ति की महत्त्वाकांक्षा है। वैदिक ऋषि आंतरिक दृष्टि से समृद्ध हैं। वे व्यक्त संसार का ऐश्वर्य की व्यवस्था करते हैं और अव्यक्त, अप्रकट संसार का दर्शन भी करते हैं।

वेदों, उपनिषदों के ऋषि इंद्र, मातरिश्वन, अग्नि और वायु आदि में एक ही परम तत्त्व देख रहे हैं। सब तरफ ऊपर-नीचे, आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ, भीतर-बाहर, व्यक्त-अव्यक्त एक ही आलोक, एक ही परम दीप्ति, एक ही अनहदनाद का अनुभव करते हैं। प्रार्थना ब्रह्मास्त्र है। भारतीय परंपरा ने प्रस्थानत्रयी की चर्चा की है। ज्ञानयात्रा के प्रारंभ के लिए प्रस्थान के समय तीन चीजें पास होनी चाहिए।

उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और गीता प्रस्थानत्रयी हैं। बाकी चीजें सामान्य हैं, लेकिन इन सबके भी पहले चित्त में 'प्रार्थना भाव' चाहिए। ज्ञानयात्रा की प्रथम चेतना जिज्ञासा है। जानने की इच्छा ही ज्ञानयात्रा पर ले जाती है, लेकिन जिज्ञासा के साथ 'मैं' जुड़ता है—मैं जानना चाहता हूँ। मैं ज्ञानयात्रा का बाधकभाव है। प्रार्थभाव मैं को लघुतम करता है और सृष्टि को महान देखता है।

प्रार्थना याचना नहीं होती है। वैदिक ऋषियों की प्रार्थनाएँ जिज्ञासा और धन्यवाद भाव से प्रस्फुटित हुई हैं। ऋषियों की जिज्ञासा वैज्ञानिकों की जिज्ञासा के समान नहीं है। यह जिज्ञासा विनम्र है, लेकिन विनम्रता में याचना नहीं है। याचक भाव का चित्त संकोच और हीनता में सिकुड़कर जड़ होता है। यहाँ पहले दर्शन है। दर्शन से विश्वास उपजा और प्रार्थना अपरिहार्य हो गई। गीता के पहले अध्याय से लेकर 11वें तक ज्ञान, कर्म, भक्ति आदि के तत्त्व हैं।

इनमें प्रार्थना नहीं है, लेकिन 11वें अध्याय, श्लोक 36 व 40 में अर्जुन ने विश्वरूप का दर्शन किया, वे आनंदित थे, आनंदमग्न थे, वे धन्यवाद भाव से सराबोर थे। तब उनके अंतर में प्रार्थना फूटी, तुम वायु हो, तुम यम-नियम-अनुशासन हो। अग्नि, वरुण, समुद्रादि हो, चंद्रमा हो, तुम्हें नमस्कार है। सामने से नमस्कार, पीछे से नमस्कार, सब तरफ से नमस्कार—'नमोस्तु ते सर्वत एव सर्व' यहाँ वायु, अग्नि, जल और चंद्र भौतिक हैं। प्रत्यक्ष हैं। सबके पीछे एक परम ऊर्जा है। जिसने देखा, जाना, उसने गाया। परम तत्त्व गाया ही जा सकता है। संयोग आश्चर्यजनक नहीं है। भारत के सभी तत्त्वदर्शक ऋषि कवि ही थे, लेकिन परम तत्त्व का गान सुनकर ही परम तत्त्व नहीं मिलता है। वेदों, उपनिषदों और गीता की घोषणा है कि वह प्रवचन या अध्ययन से नहीं मिलता है।

प्रार्थना में व्यापक ऊर्जा है। संसार विराट है। समाज बड़ा है। राष्ट्र आराध्य है। भारत में विराट ब्रह्म की प्रार्थना की परंपरा है, समाज और राष्ट्र की भी आराधना की परंपरा है। राष्ट्र की आराधना की परंपरा भारत की ही देन है। राष्ट्र जीवन के लोक-मंगल के लिए प्रार्थना भाव ही आनंददायी है। विद्यार्थी भाव संतोषजनक है, लेकिन अर्थार्थ बुद्धि से उतरना व्यर्थ है। शब्दार्थ का मूल्य नहीं होता है। शब्द स्वयं में किसी नाम का संकेत होते हैं। नाम स्वयं किसी पदार्थ का संकेत होता है। पदार्थ स्वयं किसी अरूप का रूप होता है। भौतिकवादी प्रार्थना को निरर्थक मानते हैं, लेकिन प्रार्थना भौतिक विज्ञान से आगे की यात्रा है, उत्क्रांति है।

भौतिक विज्ञान ऊर्जा और पदार्थ के बीच समन्वय स्थापित करता है। रसायन विज्ञान ऊर्जा तत्त्व और विभिन्न स्थितियों के कारण परिवर्तित हुए रूप, गुण आदि का विश्लेषण करता है। प्रार्थना रसायन विज्ञान के समीप होती है। प्रार्थना चित्त और काया के मूल घटकों में रासायनिक परिवर्तन लाती है। विश्वास नहीं हो तो प्रयोग करना चाहिए। सुख या दुःख किसी विशेष परिस्थिति में रक्तचाप, रक्त विश्लेषण की रिपोर्ट लेने के बाद प्रगाढ़ भाव से प्रार्थना करनी चाहिए। फिर रक्तचाप और रक्त के मूल संगठकों का रासायनिक विश्लेषण चौंकाने वाले तथ्य प्रस्तुत कर सकता है।

भौतिक विज्ञानी प्रार्थना का रसायन विज्ञान जानने वाले इस रहस्य को रासायनिक परिवर्तन मानते हैं, लेकिन प्रार्थना सिर्फ रासायनिक परिवर्तन ही नहीं होती है। रासायनिक परिवर्तन भौतिक परिवर्तन से बड़ा है, लेकिन सृष्टि के रहस्यों के खोजी मुमुक्षुओं के लिए कोई बड़ी बात नहीं है।

एक छोटी-सी दवा की गोली या गुड़ की ढेली भी रासायनिक परिवर्तन लाती है, लेकिन प्रार्थना इससे भी बड़ा परिवर्तन लाती है। यह रासायनिक परिवर्तन से प्रारंभ होती है। बुद्धि को विवेक बनाती है। बुद्धि खंडित सूचनाओं का संग्रह करती है। विवेक सार-असार और संसार का निर्णायक है। प्रार्थना विवेक से भी आगे ले जाती है, जहाँ सार-असार और संसार का कोई अर्थ नहीं होता है।

प्रार्थना द्वैत भाव से शुरू होती है और अद्वैत तक पहुँचा देती है। यह प्रार्थना को ही आराध्य बनाती है। तब वहाँ कोई प्रार्थना नहीं होती और न कोई आराध्य। तब

वहाँ न ब्रह्म बचता है और न माया बचती है। ऋषियों ने इसे आनंदलोक कहा है और आनंदलोक, ब्रह्मलोक कोई भौगोलिक धारणा नहीं है। यह देश-काल से इंद्रियगोचर नहीं है। इसीलिए इसकी व्याख्या नहीं हो पाती है। प्रार्थना एक विशिष्ट तकनीकी है। एक परिशुद्ध प्रगाढ़ विद्या है। प्रार्थना तो परम प्रेम है। जिसमें न तो कोई माँग है और न कोई शिकायत। इसमें न तो याचना है और न कोई वासना। प्रेम तो सर्वदा माँगशून्य होता है, बेशर्त होता है। प्रार्थना की वास्तविक अनुभूति तब होती है, जब प्रार्थना ही हमारा आनंद बन जाती है। आनंद, प्रार्थना की बाह न जोटता हो। कोई माँग न हो, पीछे जो पूरी हो जाए, तो आनंद मिलेगा। प्रार्थना करने में ही आनंद मिलता हो, तो ही प्रार्थना हो पाती है।

प्रार्थना जब हृदय में प्रकट होती है, तो कहना नहीं पड़ता कि प्रार्थना पूरी नहीं हुई। प्रार्थना का होना ही उसका पूरा होना है। प्रार्थना जीवन का शिखर है। प्रार्थना इस जगत् का अंतिम खिला हुआ फूल है। वह आखिरी ऊँचाई है, जो मनुष्य पा सकता है। इसके पार कुछ है ही नहीं। ❑

महाराज रविशंकर माह में एक बार अपने राज्य के विभिन्न गाँवों में अन्न बाँटने जाया करते थे। एक बार वे अनाज बाँटने पहुँचे तो उन्हें एक गरीब महिला मिली। महाराज ने उसे अनाज देने का प्रयत्न किया तो वो बोली—"महाराज! जब परमात्मा ने इतना बढ़िया शरीर दिया है तो परिश्रम छोड़कर मुफ्त का अन्न कैसे ग्रहण करूँ?"

महाराज को उसकी यह बात बड़ी अच्छी लगी और उन्होंने उस महिला से पूछा—"वो आजीविका कैसे प्राप्त करती है।" महिला बोली—"महाराज! मैं युवावस्था में ही विधवा हो गई थी। अतः परिवार में कोई नहीं है। जंगल से लकड़ी काटती हूँ और उसे बेचकर गुजारा कर लेती हूँ।"

महाराज ने उससे पूछा—"क्या उसके पति ने उसके लिए कोई जायदाद नहीं छोड़ी।" तो वह बोली—"उनकी तीस बीघा जमीन थी तो उसे बेचकर मैंने एक कुआँ व हौदी बनवा दी। गाँव की महिलाओं को दो-तीन मील पैदल जाकर पानी लाना पड़ता था।"

उस विधवा के उत्सर्ग व त्याग की कहानी जानकर महाराज रविशंकर अत्यंत प्रभावित हुए और बोले—"तुम धन्य हो देवी! धन से न सही, पर मन से तो तुम इतनी धनवान हो कि कोई करोड़पति भी तुम्हारी बराबरी नहीं कर सकता।"

परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी

आत्मसमीक्षा का पर्व

आध्यात्मिक जगत् के समस्त पराक्रमों में सबसे बड़ा पराक्रम श्रद्धावान साधक का होता है। जिसके पास श्रद्धा, समर्पण, विश्वास की पूँजी होती है; उसके पास न केवल आत्मविश्वास होता है, बल्कि ईश्वरविश्वास भी होता है। श्रद्धा की अभिव्यक्ति का सबसे महत्त्वपूर्ण पर्व गुरु पूर्णिमा का पर्व है। परमवंदनीया माताजी अपने इस प्रस्तुत उद्बोधन में गुरु पूर्णिमा के उसी पावन पर्व की व्याख्या करते हुए उसे आत्मसमीक्षा का पर्व घोषित करती हैं। वे कहती हैं कि इस पावन दिन हमें अपने श्रद्धा व समर्पण की समीक्षा करने की आवश्यकता है कि कहीं उसमें कोई कमी तो नहीं आ गई। जिनके पास श्रद्धा की शक्ति होती है, स्वयं भगवान उनकी रक्षा का दायित्व निबाहते हैं। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को........

आत्मसमीक्षा का पर्व

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

हमारे आत्मीय परिजनो! सभी पर्व अपना-अपना महत्त्व रखते हैं। हिंदू धर्म में जितने भी पर्व पड़ते हैं, वे सभी अपना-अपना विशेष महत्त्व रखते हैं, लेकिन यह गुरु पूर्णिमा पर्व हमारी आत्मसमीक्षा का पर्व है। यह आत्मचिंतन का पर्व है। यह प्रेरणा का पर्व है। यह हमारे सौभाग्य का पर्व है, जो हमें दिशाधारा देता है। हमको ज्ञान देता है, हमको प्रेरणा देता है हमारे जीवन में जितने और पर्व महत्त्व रखते हैं, उनसे यह बहुत अधिक महत्त्व, विशेष महत्त्व रखता है।

मैं तो यह कहती हूँ कि सबसे ऊँचा यह गुरु पूर्णिमा पर्व है। यह हमारी भावना का, श्रद्धा का पर्व है। यह निष्ठा का पर्व है। यह हमारे आत्मचिंतन का और आत्मसमीक्षा का पर्व है कि हम इस वर्ष कैसा जीवन जिएँ और आज से जो शुरू हो रहा है और जो आगे आने वाला समय है, उसको किस तरीके से जिया जाना चाहिए। जो हमको प्रेरणा दे रहा है, उस रास्ते पर हम कितना चल पाए और कितना हम नहीं चल पाए। अगर नहीं चल पाए तो आगे हमको दो कदम और चलना है।

बेटे! जब हम मिल ही गए, जब हम समर्पित ही हो गए, तो फिर हमारा अहं कहाँ रहा? फिर हम रहे कहाँ? हम तो मिल गए, उस सिंधु में जा मिले। नाला सिंधु में जा मिला, तो वह सिंधु हो गया। गंगा में मिला, तो वह गंगा हो गया। कल तक जो नाला था, जिसको हम छूते नहीं थे, जिसमें मल बहता था, गंदगी जाती थी, लेकिन वह गंगा में मिलकर के पवित्र हो गया। वह गंगा हो गया।

जब जीवन समर्पित हो गया, तो शासन भी उसी सत्ता का हो गया, जिसके हवाले हमने अपनी बागडोर सौंपी है। उसी सत्ता का हमारे ऊपर अनुशासन है; क्योंकि हमने अपने को समर्पित कर दिया। जब तक हमने अपने को समर्पित नहीं किया था, तो हम अलग थे और जब हम जा मिले, तो एकाकार हो गए। कैसे—

एक नदिया एक नार कहावत मैलो-नीर बह्यो।
दोनों मिल जब एक वरन भये सुरसरि नाम पर्‌यो॥

जब नदी और नाला आपस में मिल गए, तो उस नाले की गंदगी कहाँ रही ? नाले ने अपने को गंगा में समर्पित कर दिया, उस नदी को जो सुरसरि की धारा है।

आत्मचिंतन का अवसर

ऐसे ही आज आत्मचिंतन का पर्व है कि हम अपने अंदर खोजें कि हमारे अंदर क्या-क्या कमियाँ हैं और जो कमियाँ हैं, उनको हम निकालें। अपनी समीक्षा करें और अपने गिरेबान में मुँह डालें कि हमारे अंदर क्या-क्या मल-विक्षेप भरे हुए पड़े हैं। इनको किस प्रकार से धोया जाए। जिसके हाथ में हमने अपनी बागडोर सौंपी है, उस सत्ता से कहें कि धोना आपका काम है और समर्पण हमारा काम।

हम अपने को आपके हवाले करते हैं, आप हमारी गंदगी को हटाइए। हम अपनी जिंदगी आपके हवाले करते हैं, आप रूई के तरीके से धुनते जाइए। हम कभी भी न नहीं करेंगे कि हमारे ऊपर ये चोटें क्यों की गईं ? हमको रूई की तरह से क्यों धुना गया ? इसमें हमारी अच्छाइयाँ हैं। हमको रूई की तरह से धुना जाएगा, तो हम फूल जाएँगे। रूई की कोई ताकत नहीं होती, पर वह जब धुनी जाती है, तो फूल जाती है। हम मुसीबतों से इनकार नहीं करेंगे। हम उन्हें छाती से लगाएँगे। कहेंगे कि आइए हमने तो अपना सब कुछ तुम्हारे हवाले कर दिया है। जब सब तुम्हारा ही हो गया है, तो हमारे पास बचा ही क्या है ? जब कुछ बचा ही नहीं, तो किसी का आधिपत्य भी नहीं है।

बेटे ! जब हमारा कुछ भी नहीं है, तो न हमको कोई अहंकार है, न हमको कोई लालच है। न हमारी कोई तमन्ना है, न कोई कामना है। बस, एक ही कामना है कि भगवान पीड़ित मानव जाति की सेवा के लिए जो शक्ति देनी है, वह शक्ति देना, जिससे इसको हम ऊँचा उठा सकें। अपने स्वार्थ के लिए करेंगे तो गल जाएँगे, मर जाएँगे और नेस्तनाबूद हो जाएँगे।

स्वामी रामतीर्थ एक बार अमेरिका गए। राष्ट्रपति ने उनको बुलाया। उनकी विद्वत्ता का क्या ठिकाना ? बोलने में बड़े भारी धुरंधर विद्वान थे। राष्ट्रपति ने कहा—"यह दूसरा ईसामसीह है। देखिए उन्होंने बहुत अच्छा बोला।" विवेकानंद जब अमेरिका गए, तो उनका मजाक उड़ाया गया। अरे ! जरा-सा लड़का क्या बोल सकता है ? इसमें क्या हिम्मत है ? उन्होंने कहा कि जब आ ही गया है, तो बेइज्जती के साथ उनसे यह कह दिया गया कि अच्छा क्या विषय दिया जाएगा ? उन्होंने कहा—तुम शून्यवाद पर बोलो। विवेकानंद ने शून्यवाद पर जो बोलना शुरू किया, तो सब हैरान रह गए कि इसके अंदर से कौन बोल रहा है ? उन्होंने कहा—मैं नहीं बोल रहा हूँ। मेरे अंदर से मेरा गुरु बोल रहा है। मेरा वह प्रेरणास्रोत बोल रहा है। मेरी जबान पर मेरा गुरु बैठा है और मेरे पीछे मेरा गुरु है।

समर्पण की शक्ति

बेटे ! उसका परिणाम क्या हुआ ? मैं श्रद्धा की बात, समर्पण की बात बताती हूँ। अपने को समर्पित किया, तो रामकृष्ण परमहंस की सारी-की-सारी शक्ति विवेकानंद ने ले ली। आपको कन्याकुमारी जाना हो, तो उधर आप देखना कि विवेकानंद की एक शिला बनी है। उस पर कितने करोड़ रुपये खरच हुए हैं। क्यों खरच हुए ? बेटे ! आप जानते नहीं। उन्होंने अपने लिए नहीं किया था, अपितु अपने गुरु के लिए मारे-मारे फिरे और देश-विदेश में उन्होंने रामकृष्ण मिशन स्थापित किए थे।

वह सारा-का-सारा गुरु की शक्ति ने कराया। वह इनसान अपने लिए नहीं, लोक-मंगल के लिए जिया है। एक मिशन के लिए, एक उद्देश्य के लिए, एक लक्ष्य के लिए जिया है। इसका सम्मान तो होना ही चाहिए और स्वामी रामतीर्थ गए तब ? उनका मैं समझती हूँ कि कहीं एकाध जगह नामोनिशान हो। ऐसा क्यों ? इसलिए कि जो भी विद्वत्ता थी, जो भी उनका ज्ञान था, वह अपने लिए था। मैं बुराई नहीं कर रही हूँ, मैं तो यह बता रही हूँ कि परमसत्ता से जुड़ जाने पर, गुरु के हवाले हो जाने पर व्यक्ति कितना ऊँचा उठ जाता है। नाचीज व्यक्ति भी कहाँ-से-कहाँ पहुँच जाता है।

बेटे ! चंद्रगुप्त की कोई हैसियत नहीं थी। नाई का लड़का, जरा-सा लड़का, लेकिन चाणक्य ने उसे चक्रवर्ती राजा बना दिया। किसने ? गुरु ने बना दिया, जिस पर उसकी श्रद्धा थी। सारे गुरुकुल की देख-भाल चंद्रगुप्त करता था। गुरु ने उसे महान बना दिया। वे स्वयं ही बन जाते तो ? नहीं।

संत कभी स्वयं नहीं बनता। संत तो दूसरों को बनाता है। स्वयं परदे के पीछे काम करता है। परदे के आगे आकर कभी नहीं करता। अपना अहंकार नहीं गाता। कहता यही है कि बेटे तेरी कोई मदद हो सकेगी, तो अवश्य करेंगे, पर जी-जान से यही कोशिश करता है कि इसका तो कुछ हो ही जाना चाहिए। हो जाता है, तो हो जाता है, नहीं होता तो

भगवान मालिक है। कभी नहीं भी हो पाता। अस्सी परसेंट हो भी जाता है। बीस परसेंट नहीं भी होता, लेकिन संत अपनी ओर से पूरी कोशिश करता है।

बेटे! शिवाजी के बारे में आपको मालूम है? छोटा-सा, नन्हा-सा लड़का मराठा, उसको किस तरीके से समर्थगुरु ने छत्रपति शिवाजी बना दिया। उसकी परीक्षा ली गई कि इसके अंदर श्रद्धा भी है कि नहीं है। पहले इसको परखा जाए। पात्र को कुछ दिया जाए, तो काम आएगा और कुपात्र को दिया हुआ, तो सब व्यर्थ जाएगा। यह पात्र है या कुपात्र है, इसकी पात्रता देखी जाए।

शिवाजी को गुरु ने सिंहनी का दूध लेने के लिए भेजा। बेटे, मेरी आँख में दरद है, तू सिंहनी का दूध लेकर के आ। सिंहनी का दूध लेने के लिए जब शिवाजी गए, तो सिंहनी ने कहा—मैं तुझे खा जाऊँ तब? उन्होंने कहा—आप में कोई ताकत नहीं है, जो आप खा सकती हो। क्यों? इसलिए कि मेरे गुरुजी साथ चल रहे हैं। उनका आशीर्वाद जो मेरे पीछे-पीछे चल रहा है। आपकी क्या ताकत है, जो आप मुझे खा सकती हैं? आप नहीं खा सकतीं। मेरे गुरु ने मेरे अंदर इतना साहस और इतना बल भर दिया है कि आप खा नहीं सकतीं। आपको दूध देना ही पड़ेगा और वे दूध लेकर के वापस आ गए और गुरु से कहा—लीजिए गुरुदेव! उन्होंने कहा—"मेरी आँख तो ठीक है, मैंने तो तेरी परीक्षा ली थी।" उन्होंने भवानी से प्रार्थना की—माँ मैं इस बच्चे को बनाना चाहता हूँ। इसके लिए आपकी तलवार चाहिए? भवानी ने कहा—ले बेटे, अभय तलवार। भवानी ने अभय तलवार दी थी, जिसके द्वारा वे लड़ने में सफल हो गए, जो आज तक हमारे इतिहास में अमर हैं।

बेटे! उन्हें किसने बनाया? गुरु ने बनाया। लेकिन उनकी श्रद्धा थी, जिसने उन्हें डगमगाने नहीं दिया। गुरु ने कहा कि दूध लेकर आ, तो उसने इनकार नहीं किया। सोचा यह मेरे परीक्षा की कसौटी है। देखा जाएगा, जो होगा और देखने वाला तो मेरा गुरु है। भेजने वाला वही है, तो कंटकों में जाऊँगा, तो बचाने वाला भी वही है। यही मेरा खिवैया है। यही मुझे पार लगाएगा। वे अपने कार्य में सफल हो गए और छत्रपति शिवाजी हो गए।

गुँबज की आवाज है श्रद्धा

बेटे! मैंने आपको ये दो-तीन उदाहरण किसलिए दिए? एक ही बात पर दिए कि श्रद्धा हमारी गुंबज की आवाज की तरह होती है। गुंबज में जब हम आवाज लगाते हैं, तो लौटकर के वह आवाज हमारे पास आती है। हमारे मथुरा में एक पोतरा कुंड है। वहाँ पता नहीं क्या खूबी है? वहाँ जाकर के स्त्री-पुरुष यों कहते हैं—"नंदलाल"। "नंद जी का लाला सोवे कि जागे"। तो पीछे से वो 'जागे' शब्द लौटकर आता है।

यह श्रद्धा गुंबज की आवाज है, जो लौटकर आती है। गेंद को आप पूरी तरह ताकत से फेंकिए। पूरी ताकत से फेंकने के बाद गेंद वापस आपके पास आएगी; चूँकि आपने पूरी ताकत लगाई है न। यह श्रद्धा भी ऐसी ही है। हमारी श्रद्धा जितनी परिपक्व होती है, उतने ही अनुदान और वरदान हमें अनायास ही मिल जाते हैं। भौतिक भी, लौकिक भी और पारलौकिक लाभ भी हमको मिलता हुआ चला जाता है। यों तो व्यक्ति की ख्वाहिश का कोई पारावार नहीं है। आज हमारे पास एक पैसा है, तो कल हम कहेंगे कि वह पाँच गुने हो जाएँ, दस गुने हो जाएँ, सौ गुने हो जाएँ, लाख गुने हो जाएँ, करोड़ गुने हो जाएँ। इसका पारावार है क्या और यदि हमारे अंदर संतोष है तब? तब हम संसार के सबसे अमीर आदमी होंगे।

इसका मतलब यह नहीं है कि व्यक्ति को क्रियाशील नहीं रहना चाहिए। पुरुषार्थ नहीं करना चाहिए। यह कतई नहीं है; लेकिन उसमें उलझ नहीं जाना चाहिए। उसी में लिप्त नहीं हो जाना चाहिए। कुछ भगवान के निमित्त भी उसको सोचना चाहिए कि जिसने हमें शरीर दिया है। जिस गुरु ने हमको अनुदान और वरदान दिए हैं। जो हमारा पोषण कर रहा है, जो हमारी रक्षा कर रहा है। क्या उसके लक्ष्य और उसके उद्देश्य के लिए भी हमारा जीवन समर्पित है या नहीं है। क्या हमारे ऊपर हमारे बीबी-बच्चों का ही अधिकार है या किसी और का भी अधिकार हमारे ऊपर है?

बेटे, हमारे ऊपर गुरु का ऋण है। वह चुकाया जाना ही चाहिए। अपने माध्यम से आपको मैं कह रही हूँ। यह ऋण है कि समय रहते ही हमको जाग जाना चाहिए, नहीं तो जिंदगी में पछताना ही रह जाएगा और यह रह जाएगा कि हाँ, हमको कोई ऐसा संत, ऐसा ऋषि मिला था, जिसने हमको झकझोरा। दिन और रात हमारे लिए एक कर दिए। जो सूख-सूखकर पिंजर हो गया, हमारे लिए अर्थात सारे समाज के लिए, सारे राष्ट्र के लिए उन्होंने अपने को तिल-तिल गला डाला, लेकिन हम न जाने किस मिट्टी के बने हैं

कि टस-से-मस न हो सके। हम यह भी न समझ सके कि आज जो समस्याएँ हैं, राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय समस्याएँ हैं, वे कितनी भयावह समस्याएँ हैं। आप चिंतित हैं। बेटे, आप जरा भी चिंतित नहीं हैं, राई के बराबर भी चिंतित नहीं हैं। सुई की नोक के बराबर भी चिंतित नहीं हैं। गुरुजी के हृदय को देखो खोलकर, तो सिवाय सारे राष्ट्र के और सारे विश्व के चिंतन के अलावा आपको और कुछ भी नहीं मिलेगा।

बेटे! इस समय भी यदि हम एकजुट होकर नहीं रहे और हमने ऐसे ही समय गँवा दिया, तो फिर हाथ कुछ लगने वाला नहीं है, फिर पश्चात्ताप ही रह जाएगा। फिर कोई आपको जगाने वाला नहीं है। फिर कोई आपको दुलार करने वाला नहीं है। यह भी हम आपको बता देते हैं कि फिर आपको झकझोरने वाला भी नहीं मिलेगा और आपको दुलारने वाला भी नहीं मिलेगा। दोनों ही नहीं मिलेंगे। फिर आपको सारी जिंदगी सिर पटक-पटककर आपकी जीवात्मा धिक्कारती रहेगी। उससे पहले ही हमको सजग हो जाना चाहिए।

समय से पहले यदि आप सजग हो जाएँ, तो क्या हर्ज की बात है? आपको जगाने वाला भी मौजूद है। आपको प्रेरणा देने वाला भी मौजूद है और आपको पुचकारने वाला भी मौजूद है। आपको छाती से लगाने वाला भी मौजूद है और गोद में खिलाने वाला भी मौजूद है। आँचल की छाया देने वाला भी मौजूद है। गड़बड़ी फैलाएँगे तो कान ऐंठने वाला भी मौजूद है। क्यों? क्योंकि जब तक गलती नहीं सुधारी जाएगी, तब तक उसके अंदर अच्छाइयाँ नहीं आएँगी। यदि आपका समर्पित जीवन है कि हम अच्छाइयों के लिए हर पल, हर संभव आपके हैं, तो फिर हम आपको बना लेंगे। कैसी भी मिट्टी क्यों न हो, फिर भी बना लेंगे।

श्रद्धा जीवन में कितनी फलदायी होती है कि मैं आपसे क्या कहूँ? बेटे! कहते नहीं बनता। यह जिंदगी का अनुभव है। यह आप जो सुन रहे हैं, यह हमारी जिंदगी का अनुभव है। अनुभव न होता, तो हम आपसे कुछ नहीं कहते। श्रद्धा ने हमारे जीवन में ऐसा रंग लाया है कि हमें दीन और दुनिया का कुछ पता नहीं। हमें अपनी श्रद्धा का मालूम है और हमें यह मालूम है कि हमें दु:खी और पीड़ित मानव जाति की सेवा करनी है। भगवान आपको कुछ देना है, कोई शक्ति देनी है, तो हमको वह देना कि हमारे जो परिजन बैठे हैं, इनका कोई दु:ख-कष्ट हो, तो हमारी आयु इनको लग जाए या कोई मुसीबत में पड़े हों, तो हमको कष्ट दे देना। हमको चाहे कैंसर दे देना, चाहे जो दे देना, हम उसको सहर्ष स्वीकार कर लेंगे, पर हमारे बच्चों को, जिन्होंने हमसे माँ कहा है, जिन्होंने गुरु कहा है; जो कहते हैं कि ये हमारे प्रेरणा के स्रोत हैं—ये हमारी रक्षा करेंगे। ये हमारे हैं, तो भगवान आप इनको बचाना। हमको ले लेना, पर इनको बचा लेना।

'नवसृजन योजना' महाकाल की योजना है, वह पूरी तो होनी ही है। उस परिवर्तन का आधार बनेगा चरित्रनिष्ठ, भाव-संवेदनायुक्त व्यक्तित्वों से। ऐसे व्यक्तित्व बनाना विद्या का काम है, मात्र शिक्षा उसके लिए पर्याप्त नहीं। मात्र शिक्षा-साक्षरता तो मनुष्य को निपट स्वार्थी भी बना सकती है। उसमें विद्या का समावेश अनिवार्य है। अस्तु नवयुग के अनुरूप मन:स्थितियाँ एवं परिस्थितियाँ उत्पन्न करने के लिए बड़ी संख्या में ऐसे प्राध्यापकों की आवश्यकता अनुभव हो रही है, जिनकी शिक्षा भले ही सामान्य हो, पर वे अपने चुंबकीय व्यक्तित्व और चरित्र से निकटवर्ती क्षेत्र को अपनी विशिष्टताओं से भर देने की विद्या के धनी हों।

—परमपूज्य गुरुदेव

बेटे! श्रद्धा से व्यक्ति एकलव्य बन सकता है। संत कबीर बन सकता है। मीरा की श्रद्धा ने पत्थर के टुकड़े को जीवंत गिरिधर गोपाल बना दिया, जो मीरा के साथ नाचता था। रास करता था। मीरा के लिए जहर का प्याला भेजा गया था, तो उसे कृष्ण ने पिया और मीरा ने अमृत पिया। क्यों? उसकी श्रद्धा थी। उन्होंने कहा कि मीरा

जहर पिएगी? नहीं, मीरा जहर नहीं पिएगी। तो जहर कौन पिएगा? मेरे प्राणों से प्यारी मीरा, श्रद्धा की मूर्ति मीरा जहर क्यों पिएगी?

बेटे, उसके गिरिधर गोपाल ने उसके जीवन में रंग ला दिया। अपने कृष्ण के लिए वह मारी-मारी फिरी और कृष्ण जिंदा होता तो? तो बेटे, कितने आक्षेप उसके ऊपर लगे होते। उसने उसी पत्थर की मूर्ति में से गिरिधर गोपाल को पैदा कर लिया और एकतारा लेकर के उसके लक्षण, गुणगान करने के लिए कहाँ-कहाँ फिरी? वृंदावन से लेकर जयपुर और न जाने कहाँ-कहाँ मीरा फिरी और सूरदास? कहते हैं कि सूरदास अंधे हो गए थे, तो कृष्ण उनकी लाठी लेकर के चलते थे। हमारी, आपकी लाठी लेकर के चलेंगे? बिलकुल भी नहीं चलेंगे, चाहे सारी जिंदगी तपस्या करते रहिए। क्यों? क्योंकि हमने मन नहीं धोया। न हमने तन की सफाई की, न हमने मन की सफाई की। जब मन को हमने धोया नहीं, उसके हवाले किया नहीं, तो हमारी बागडोर कैसे सँभालेगा और क्यों सँभालेगा?

बेटे! भगवान ने आपको शरीर दिया है। भगवान से माँगना है तो वह चीज माँग, जिससे कि आत्मपरिष्कार हो। जिससे आत्मोद्धार हो। बुद्धि पर जो काई जम गई है, उसे हटाने की बात क्यों नहीं माँगते कि भगवान मुझे थोड़ी-सी बुद्धि दे। सद्‌बुद्धि तो माँगते नहीं हैं। माँगते हैं तो वे भौतिक चीजें, जो कि साथ जाने वाली नहीं हैं। उन चीजों को माँगने से क्या लाभ? उन चीजों को तो हम पुरुषार्थ से कमा सकते हैं।

पैसे को हम पुरुषार्थ से कमा सकते हैं; लेकिन श्रद्धा को हम पुरुषार्थ से नहीं कमा सकते। वह हमें अपने अंदर से पैदा करनी पड़ेगी। अंदर से जब पैदा कर लेंगे, तब फिर जैसा कि मैंने अभी उदाहरण दिया था और आपको बताया था कि किन-किन रूपों में किनने मदद की थी। यह सब मैंने अभी आपको बताया।

श्रद्धा से मिलती है शक्ति

राम और लक्ष्मण विश्वामित्र जी के यहाँ गए, तो उन्होंने अपना सब सौंप दिया था। राम और लक्ष्मण ने कहा—गुरुदेव! आप यज्ञ कर रहे हैं न? आपके यज्ञ के लिए हम दोनों भाई धनुष लेकर के खड़े हैं। एक पल भी डिगे नहीं, हटे नहीं। जो कार्य सौंपा, वही उन्होंने करके दिखाया। जो कहा, वही किया, तो विश्वामित्र ने अपनी सारी-की-सारी विद्या उन्हें सिखा दी। किनको? राम और लक्ष्मण दोनों को। और कोई नहीं पैदा हुए थे क्या? हुए होंगे; लेकिन वह श्रद्धा उन व्यक्तियों में नहीं होगी, जो राम और लक्ष्मण में थी।

उनमें जो पात्रता थी, वह औरों में नहीं थी। इसलिए उन दोनों को ही सारी विद्याएँ मिल गईं, शक्तियाँ मिल गईं। कैसे मिल गईं? बेटे, श्रद्धा से मिल गईं। उन्होंने कहा कि यह तन भी आपका और मन भी आपका। हम राजकुमार हैं तो क्या हुआ? राजापन हमारा अयोध्या में है और गुरु के दरबार में हम शिष्य हैं, हम छोटे हैं। न हम धनी हैं, न निर्धन हैं। हम तो इनसान हैं और अबोध बच्चे हैं।

बेटे! लोक-मंगल के लिए काम करने के लिए खुद ही खड़ा होना पड़ेगा। आपको अपने लक्ष्य का निर्धारण खुद ही करना पड़ेगा कि सही क्या है और गलत क्या है? विवेक क्या है और अविवेक क्या है? इसका निर्धारण तो आपको ही करना पड़ेगा। आप अपने रास्ते पर दूसरों को चलाइए, पर आप तो स्वयं शिकार हो गए हैं। जिसने कुछ कह दिया, वही आपके समझ में आ गया, फिर आपकी अक्ल कहाँ गई? आप किस मतलब की दवा हैं? आपकी अक्ल में क्या जंग लग गई? नहीं बेटे, जंग नहीं लग गई। आप नई शक्ति लेकर के जाइए।

आज आत्मसमीक्षा का दिन है। आज आत्मसमीक्षा कीजिए, आत्मचिंतन कीजिए और भावनाओं में सराबोर होइए। अब आप लोग जवान हो जाइए। बुड्‌ढे मत रहिए। आपसे निवेदन है कि आप अपने विवेक की आँखें खोलें, अपने अंत:करण को खोलें। हमारा अंत:करण कुंठित हो गया है। हमारी बाहरी आँखें तो हैं, पर शंकर जी की तरह तीसरा नेत्र जो ज्ञान का है, उसे उदय कर लें, तो आपको ज्ञान आ जाएगा, विवेक जाग्रत हो जाएगा।

मेरा तो आज का विषय यही है कि जो ईंधन होता है, लकड़ी होती है, जब वह आग को समर्पित हो जाती है, तो वह अग्नि का रूप धारण कर लेती है। फिर वह लकड़ी नहीं रहती। वह समर्पित हो जाती है, भस्मीभूत हो जाती है। हमारे ऊपर जो आवरण चढ़े हुए हैं, इन आवरणों को निकालना चाहिए। अँगारे के ऊपर राख का एक आवरण आ जाता है, कहीं आपने कोई कंडा जला हुआ देखा होगा। लकड़ी का कोयला निकलता है, तो उसके ऊपर एक सफेद

परत जैसी होती है और जब हम उस परत को, राख को निकाल देते हैं, तो उस अँगारे से हम गरमी प्राप्त कर सकते हैं।

जब तक परत जमा है, तो उससे हम गरमी प्राप्त नहीं कर सकते हैं ? उन परतों को हटाया जाना चाहिए। हमारे अंदर जो भी परतें हैं, इनका तो आप अंदाजा लगाइए कि क्या-क्या परतें हो सकती हैं ? इसमें तो हम अनेक परतें निकाल सकते हैं। आलस्य है, प्रमाद है, असंयम है, कुविचार हैं। गिनाने लगें तो ढेरों गिन जाएँगे। हमको इन सबको निकालना है। उस ईंधन की तरह से, आग के तरीके से अब हमको एकाकार होना है। अब हम ज्वलंत आग लेकर जाएँ और हम आग ही पैदा करें।

आज आप आग लेकर के जाइए, जो गुरुजी के हृदय की चिनगारी है। उस चिनगारी में से आप एक चिनगारी माँगिए। यह कहिए कि गुरुदेव हमको वह चिनगारी दीजिए, जो आपके अंदर काम कर रही है। उसमें से आपको जो मिलेगा, तो आपके अंदर में भी वही चिनगारी काम करेगी, जो उनके अंदर काम कर रही है। फिर देखना आनंद आ जाएगा। इन्हीं शब्दों के साथ मैं अपनी बात समाप्त करती हूँ।

॥ ॐ शांतिः ॥

महात्मा तिरुवल्लुवर कपड़े बुनकर अपनी आजीविका चलाते थे। एक दिन संध्या समय उनके पास एक उद्दंड युवक आया और एक कपड़े का दाम पूछने लगा। संत ने बताया—''बीस रुपये।'' युवक ने उस कपड़े के दो टुकड़े कर दिए और फिर उनका मूल्य पूछा। संत ने कहा—''दस-दस रुपये।'' इस पर युवक ने उन टुकड़ों के भी टुकड़े कर दिए और बोला—''अब।'' संत ने उसी गंभीरता से कहा—''पाँच-पाँच रुपये।'' इस पर वह युवक उन टुकड़ों के टुकड़े करते गया और संत धैर्यपूर्वक उनका मूल्य बताते रहे।

युवक संभवतः उन्हें क्रोधित करने के लिए संकल्पित-सा दिख रहा था। अंत में युवक ने तार-तार किए हुए उस कपड़े को गेंद की तरह लपेटा और कहा—''अब।'' तिरुवल्लुवर ने कहा—''बेटा! इस कपड़े में अब रह ही क्या गया है, जिसका मूल्य लगाया जाए। इसे तुम निःशुल्क ले जा सकते हो।'' अब भी उनका इतना धीर-गंभीर उत्तर सुनकर युवक का हृदय पश्चात्ताप से भर गया और वह उनके सम्मुख नतमस्तक हो गया। वस्तुतः व्यक्ति दंड द्वारा उतना नहीं सीखता, जितना क्षमा और प्रेम द्वारा सीखता है।

राम और श्रीराम एक हैं

नवसंवत्सर की नवीन आभा के साथ विश्वविद्यालय परिसर में श्रद्धेय कुलाधिपति के वचनों की अमृतवर्षा का क्रम आरंभ हुआ। प्रतिवर्ष की भाँति इस बार भी श्रीरामचरितमानस में रामकथा का ही प्रसंग रहा। रामकथा के प्रसंग में उन्होंने श्रीरामचरितमानस में श्रीरामवचनामृत के प्रकरण की व्याख्या की। इस रामकथा प्रसंग में प्रभु श्रीराम के अनमोल वचन विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के साथ अपने गायत्री परिवार के परिजनों को भी सुनने के लिए मिले। नवरात्र के नौ दिनों में दिए गए इन ऑनलाइन संध्याकालीन विशेष उद्बोधनों का यही प्रयास रहा कि व्यक्ति अपने जीवन में देवत्व जगाने हेतु उन तथ्यों की व उन वचनों की गहराई में जाए, जो भगवान श्रीराम के मुख से निकले।

श्रीरामचंद्र जी के वचन सुनने में अत्यंत कोमल, मधुर व कानों में अमृत घोलने के समान थे, उनके ओजस्वी वचन सत्यनिष्ठ, दृढ़ प्रतिज्ञ, सटीक, सुसंस्कृत, अलंकार से सुशोभित व प्रामाणिक होते थे।

श्रीरामचंद्र जी की वाणी अतिप्रामाणिक मानी गई है; क्योंकि उन्होंने जो कहा, उसे प्राणपण से पूरा किया। वचन निभाने की रघुकुल रीति के बारे में ऐसा कहा जाता है कि—

रघुकुल रीति सदा चलि आई।
प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई॥

अर्थात रघुकुल में सदा से यही रीति चली आई है कि प्राण भले ही चले जाएँ, पर वचन नहीं जाता।

श्रीरामचरितमानस में भगवान श्रीराम के वचन कैसे थे ? वे दूसरों के साथ कैसे संवाद करते थे, विभिन्न महत्त्वपूर्ण विषयों पर उनके विचार कैसे थे ? वे लोगों से क्या कहना चाहते थे, अपने परिवारवालों से कैसे संवाद करते थे और उनके ऋषियों के साथ, मित्रों के साथ, प्रजा के साथ, असुरों व राक्षसों के साथ, शत्रुपक्ष के साथ संवाद कैसे थे। उनके वचनों की क्या महत्ता थी, उनकी क्या विशेषता थी। यह सब विस्तार से इस बार के नवरात्र में चर्चा व चिंतन का विषय रहा।

(1) प्रथम दिवस—इस दिन सर्वप्रथम वाणी का महत्त्व, वाणी की विशेषता, वाणी के गुण व दोषों को बताने के साथ श्रीरामचरितमानस में भगवान की वाणी के प्रभाव को बताया गया है कि किस तरह से हजारों वर्षों से तप में लीन मनु-शतरूपा ने जब परम गंभीर व कृपारूपी अमृत से सिक्त आकाशवाणी को सुना, तब उसे सुनने मात्र से उनके शरीर अत्यंत सुंदर व हृष्ट-पुष्ट हो गए।

(2) द्वितीय दिवस—इस दिन श्रीरामचंद्र जी के सामान्य परिचय व उनके व्यक्तित्व पर चर्चा करने के साथ श्रीरामचरितमानस के बालकांड में आए हुए श्रीरामचंद्र जी के संवादों की चर्चा की गई। जिनमें विशेष संवाद थे— श्रीराम-विश्वामित्र संवाद, श्रीराम-लक्ष्मण संवाद, श्रीराम-परशुराम संवाद, श्रीराम-सुनयना संवाद, श्रीराम का अपनी माताओं के साथ संवाद।

श्रीरामचरितमानस के बालकांड में उनकी शिक्षा ग्रहण करने तक उनका कोई संवाद नहीं है, उनके संवाद की शुरुआत ही श्रीराम-विश्वामित्र संवाद से होती है, इसके पहले केवल उनके चरित्र व आचरण की ही चर्चा है। बालकांड में श्रीराम का ऋषियों व अपने परिजनों के साथ जो संवाद हुआ, उसमें उनकी वाणी अत्यंत मृदु, विनम्र, संकोची व आज्ञा का अनुसरण करने वाली रही।

उन्होंने कहीं भी किसी भी परिजन से कटु वचन नहीं कहे, अपनी वाणी से किसी का दिल नहीं दुःखाया और न ही किसी का अपमान किया। श्रीराम-परशुराम संवाद में ऋषि परशुराम के अति क्रोध में होने पर भी श्रीरामचंद्र ने अत्यंत विनम्रता, विवेक व साहस का परिचय देते हुए मुनि से संवाद किया और अपने कोमल, मृदु व अमृत वचनों से सबके मन को मुग्ध किया।

(3) तृतीय दिवस—इस दिन श्रीरामचरितमानस के अयोध्याकांड में श्रीरामचंद्र के संवादों में निहित वचनामृत की चर्चा की गई। इन संवादों में श्रीराम-कैकेयी संवाद, श्रीराम-दशरथ संवाद, श्रीराम-कौशल्या संवाद, श्रीराम-जानकी संवाद, श्रीराम-लक्ष्मण संवाद, श्रीराम का प्रजा के

साथ संवाद, श्रीराम-सुमंत्र संवाद, श्रीराम-केवट संवाद प्रमुख हैं।

अयोध्याकांड का आरंभ श्रीराम के राज्याभिषेक की तैयारियों के साथ होता है, लेकिन परिस्थितियाँ कुछ ऐसी बनती हैं कि पिता दशरथ द्वारा माता कैकेयी को दिए गए वचन की पूर्ति हेतु श्रीरामचंद्र को 14 वर्ष के वनवास की आज्ञा मिल जाती है, यानी श्रीरामचंद्र जी को अयोध्या का राज्य मिलने के स्थान पर वन का राज्य मिल जाता है और इस सूचना को पूरी अयोध्या में फैलते हुए देर नहीं लगती, सभी माता कैकेयी को कोसने लगते हैं और श्रीरामचंद्र जी के वन जाने से दु:खी होने लगते हैं। हालाँकि श्रीरामचंद्र जी इस परिस्थिति में बड़े ही धैर्य के साथ शांतचित्त रहते हैं, अविचलित रहते हैं, लेकिन साथ ही पिता दशरथ व माता कौशल्या के दु:ख-से-दु:खी भी होते हैं।

जीवन में अचानक आई हुई इस विपरीत परिस्थिति को श्रीरामचंद्र जी बड़े ही सकारात्मक ढंग से देखते हैं और अपने सभी परिजनों का धैर्य बँधाते हुए, उन्हें समझाते हुए वन जाने के लिए तैयार होते हैं, इस अवसर पर उनके अपने परिजनों से जो संवाद होते हैं, वे बड़े ही महत्त्वपूर्ण हैं, जो यह दरसाते हैं कि विपरीत परिस्थितियों में भी श्रीरामचंद्र जी अपने परिजनों से किसी भी तरह से कटु वचनों का प्रयोग व गलत व्यवहार नहीं करते, अपितु परिस्थिति को सँभालते हुए अपने कर्त्तव्य की ओर आगे बढ़ते हैं।

(4) चतुर्थ दिवस—इस दिन भी अयोध्याकांड के शेष बचे हुए श्रीरामचंद्र के संवादों में निहित वचनामृत पर चर्चा की गई। इसमें मुख्य रूप से श्रीराम-वाल्मीकि संवाद, श्रीराम-सीता-लक्ष्मण संवाद, श्रीराम का माताओं के साथ संवाद, श्रीराम-वसिष्ठ संवाद, श्रीराम-भरत संवाद, श्रीराम का सभी मुनियों व परिजनों की सभा में संवाद प्रमुख हैं।

अयोध्याकांड के इन प्रसंगों में भरत जी अपने बड़े भ्राता श्रीरामचंद्र को मनाने के लिए अयोध्यावासियों के साथ अयोध्या से चित्रकूट आते हैं और श्रीरामचन्द्र जी को मनाने का बहुत प्रयास करते हैं, लेकिन फिर श्रीरामचंद्र जी के समझाने से व उनके आदेश से भरत उनकी चरणपादुका लेकर अयोध्या लौट जाते हैं और वहीं नंदीग्राम में निवास करके तप करते हुए राज-काज का कार्य सँभालते हैं।

(5) पंचम दिवस—इस दिन श्रीरामचरितमानस के अरण्यकांड में श्रीरामचंद्र के संवादों में निहित वचनामृत पर चर्चा की गई। इसमें अरण्य में लिए जाने वाले श्रीरामचंद्र जी के अटल प्रण (**निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह**) के उपरांत श्रीराम-सुतीक्ष्ण मुनि संवाद, श्रीराम-अगस्त्य ऋषि संवाद, श्रीराम-लक्ष्मण संवाद, श्रीराम-खर-दूषण संवाद, श्रीराम-जानकी संवाद, श्रीराम-जटायु संवाद, श्रीराम-शबरी संवाद व उन्हें दिया गया नवधा भक्ति के उपदेश प्रमुख हैं।

अरण्यकांड में ऋषियों से मिलन व संवाद के साथ पहली बार श्रीराम का असुरों के साथ संवाद होता है, जिसमें उनके वीर रस से भरे हुए ओजस्वी वचन होते हैं। यहाँ से उनके द्वारा लिए गए 'धरती को राक्षसविहीन करने का प्रण' आरंभ हो जाता है।

6. षष्ठ दिवस—इस दिन भी अरण्यकांड के कुछ शेष बचे हुए श्रीराम के संवादों व साथ ही किष्किंधाकांड में श्रीराम के संवादों में निहित वचनामृत की चर्चा की गई। जिनमें श्रीराम-नारद संवाद, श्रीराम-हनुमान संवाद, श्रीराम-सुग्रीव संवाद, श्रीराम-बालि संवाद, श्रीराम-तारा संवाद, श्रीराम-लक्ष्मण संवाद प्रमुख हैं।

(7) सप्तम दिवस—इस दिन श्रीरामचरितमानस के संपूर्ण सुंदरकांड व लंकाकांड के आरंभिक कुछ प्रसंगों में भगवान श्रीराम के संवादों में निहित वचनामृत की चर्चा की गई। इसमें हनुमान जी द्वारा जानकी जी को श्रीराम का संदेश पहुँचाना, फिर श्रीराम-हनुमान संवाद, श्रीराम-सुग्रीव संवाद, श्रीराम-विभीषण संवाद, श्रीराम-लक्ष्मण संवाद, श्रीराम-समुद्रदेव संवाद प्रमुख हैं, इसके उपरांत लंकाकांड में श्रीरामचंद्र जी वानर-भालुओं को अविलंब सेतु-निर्माण की आज्ञा देते हैं और वहीं पर शिवलिंग की विधिवत् स्थापना करने के साथ रामेश्वर शिवलिंग के पूजन व दर्शन का महत्त्व सभी को बतलाते हैं।

(8) अष्टम दिवस—इस दिन श्रीरामचरितमानस के लंकाकांड में श्रीराम के संवादों में निहित वचनामृत पर चर्चा की गई। इसमें श्रीराम का सुग्रीव, हनुमान व विभीषण के साथ संवाद, श्रीराम-अंगद संवाद, मूर्च्छित पड़े हुए भाई के समक्ष श्रीराम के विषादपूर्ण वचन, श्रीराम का सुग्रीव-विभीषण व लक्ष्मण को आदेश, श्रीराम-विभीषण संवाद, श्रीराम-लक्ष्मण संवाद, श्रीराम-रावण संवाद, श्रीराम-दशरथ संवाद, श्रीराम-देवराज इंद्र संवाद, श्रीराम-जानकी, श्रीराम-हनुमान संवाद प्रमुख हैं।

(9) **नवम दिवस**—इस दिन श्रीरामचरितमानस के उत्तरकांड में श्रीराम के संवादों में निहित वचनामृत पर चर्चा की गई। इसमें श्रीराम का पुष्पक विमान को आदेश, अयोध्या आगमन में श्रीराम का सबसे पहले गुरु वसिष्ठ को प्रणाम व वार्त्तालाप, श्रीराम का अपने सब वानर सखाओं से संवाद, श्रीराम-सनकादि मुनि संवाद, श्रीराम-भरत संवाद, श्रीराम का प्रजा को उपदेश, श्रीराम-काकभुशुंडि संवाद प्रमुख हैं।

अथ से इति तक—बालकांड से उत्तरकांड यानी कि आरंभ से अंत तक श्रीराम वचनामृत के कथा-प्रसंग में प्रभु श्रीराम के मानवीय व ईश्वरीय स्वरूप की झलक है।

वे मर्यादापुरुषोत्तम हैं। जीवन के सभी आयाम उनमें प्रकट हैं। वह नरदेहधारी नारायण हैं, जो अपने वचनों से नर को नारायण तक पहुँचने का सुपथ प्रदर्शित करते हैं। हमें—हम सबको—हममें से प्रत्येक को कहाँ पर क्या बोलना चाहिए, किससे क्या कहना चाहिए, यह प्रवचनमाला इसके लिए **पथप्रदर्शिका है, मार्गदर्शिका है और मार्गदर्शन करने** वाले हैं—मर्यादा पुरुषोत्तम जीवन-विद्या के परमाचार्य प्रभु श्रीराम।

प्रभु श्रीराम की इस कथावार्त्ता में, चर्चा-चिंतन में बार-बार यह अनुभूति होती रही कि जैसे कि हम सब परमपूज्य गुरुदेव की बातें कह रहे हों। जो समझने का प्रयास करेंगे—वे सुनिश्चित रूप से यह समझेंगे, जानेंगे कि राम और श्रीराम एक हैं। यह दिव्य अनुभूति श्रीराम वचनामृत में परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी की अनुभूति प्रदान करेगी। ❑

महाकवि माघ प्रसिद्ध कवि होने के अतिरिक्त एक उदारचेता महामानव भी थे। उनके साथ उनके परिवार के हर सदस्य के अंदर भी उदारता की यह भावना कूट-कूटकर भरी हुई थी।

एक बार एक निर्धन व्यक्ति उनसे सहायता माँगने पहुँचा। उसको अपनी पुत्री का विवाह करना था, पर उसके पास अपेक्षित धनराशि का अभाव था। उसकी व्यथा सुनकर माघ चिंतित हो गए; क्योंकि उनके पास भी इतना धन न था, जिससे वे उस व्यक्ति की सहायता कर पाते।

माघ को चिंतित देख उनकी माँ ने अपने कान के कुंडल उतारकर उनके हाथ पर रख दिए, ताकि उनका उपयोग कर माघ उस व्यक्ति की आर्थिक सहायता कर सकें।

माघ उन कुंडलों को अपने हाथ में ले पाते कि तब तक उनकी पत्नी ने भी अपने हाथ के कड़े उतारकर माघ के हाथों में रख दिए और बोलीं—''माँ के कुंडल इतने बड़े कार्य के लिए पर्याप्त न होंगे, आप मेरे कड़े भी ले लें।'' घर आया निर्धन व्यक्ति माघ एवं उनके परिवार की उदारता के आगे नतमस्तक हो गया।

मंगलमयी संभावनाओं के चयन का समय

परमपूज्य गुरुदेव ने वर्तमान समय को एक ऐतिहासिक, असाधारण एवं अभूतपूर्व समय कहकर पुकारा; क्योंकि जो वर्तमान समय की परिस्थितियाँ हैं-वो निश्चित रूप से मानवता के इतिहास की सबसे ज्यादा चुनौतीपूर्ण परिस्थितियाँ हैं। इसे पूज्य गुरुदेव ने इसी कारण से युग संधि, युग विभीषिका की संज्ञा दी। संधिकाल उसे कहकर पुकारा जाता है, जहाँ पर एक समय जाता है और दूसरे के आने की व्यवस्था बनती है। दिन के जाने और रात के आने के समय को हम सायंकाल की संध्या कहकर पुकारते हैं। रात के जाने एवं सुबह के आने को हम उषाकाल कहकर के पुकारते हैं।

इसी क्रम में परमपूज्य गुरुदेव ने आज के समय को, वर्तमान परिस्थितियों को संधिकाल कहा; क्योंकि इन संक्रमण भरी परिस्थितियों में असुरता के जाने की एवं देवत्व के आगमन की व्यवस्था बनाई जा रही है। एक तरह का देवासुर संग्राम आज की परिस्थितियों में भी लड़ा जा रहा है जहाँ मनुष्य के व्यक्तित्व के स्तर पर घटता विप्लव एक ऐसे ही समय की ओर इशारा करता है। आज का समय एक तरह के महासमर की तरह से ही है; क्योंकि कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि की तरह से आज के समय में भी एक तरह सारी पैशाचिक प्रवृत्तियाँ उपस्थित हैं तो दूसरी ओर देवत्व का समर्थन करने वाली ऋषिसत्ता।

पैशाचिक प्रवृत्तियों के प्रभाव में आज मानवता बुरी तरह से अपने उद्देश्य को भुलाए हुए दिखाई पड़ती है। ऐसा लगता है कि धूम्रलोचन ने मनुष्य को और उसके मन को स्वार्थ, संकीर्णता की दौड़ में, अपने हितों को पूरा करने की दौड़ में इस तरह से निरत कर दिया है कि उनको पूरी करने की दौड़ में लोग आज सज्जनता एवं सद्भाव का जनाजा निकालने में संकोच नहीं करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के मन में इन नकारात्मक शक्तियों ने महत्त्वाकांक्षाओं का अंबार इस तरह से लगा दिया है कि उनको पूरा करने की दौड़ में व्यक्ति न संस्कृति के संरक्षण की परवाह करता है और न ही उसे राष्ट्रहित स्मरण रहते हैं। वर्तमान समय का प्रवाह इस कदर गलत दिशा में चला गया है कि व्यक्ति गलत पथ पर चलते समय उसे गलत मानता ही नहीं है—वह उसे सही समझकर उस पर झटपट चलने का प्रयास करता दिखाई पड़ता है।

यह ठीक बात है कि इस दौड़ के परिणामस्वरूप हमारे लिए सुख व सुविधाओं के अंबार लग गए हैं, पर क्या यह सत्य नहीं है कि इसी दौड़ का एक दुष्परिणाम इस रूप में भी निकलकर आया है कि जितनी तेजी से साधनों का जखीरा खड़ा हुआ है, उतनी ही तेजी से लोगों का चरित्र गिरा है, भावनाएँ सिकुड़ी हैं और परस्पर के विश्वास का स्थान शंका-कुशंकाओं ने ले लिया है। यह कितना बड़ा दुर्भाग्य है कि घरों के आकार जिस अनुपात में बढ़े हैं, शायद उसी अनुपात में परिवारों से प्रेम भी विदा हुआ है। यह ठीक बात है कि लोगों के बटुए भारी हुए हैं, पर क्या मनुष्य की भावनाओं की दरिद्रता उसी अनुपात में बढ़ी नहीं है? दुर्भाग्य ये है कि ईमानदारी, विश्वसनीयता, कर्त्तव्यपरायणता इतनी तेजी से गिर रहे हैं कि व्यक्ति के मन में न तो समाज का संकोच है, न प्रशासन का भय है और न ही उसके मन में ईश्वरीय न्याय-व्यवस्था पर कोई भरोसा रह गया है।

ऐसा भी कहा जा सकता है कि वर्तमान समय की परिस्थितियाँ, ऐसी परिस्थितियाँ हैं, जिनकी पृष्ठभूमि में हमें संपूर्ण विनाश की संभावनाएँ स्पष्टता से दिखाई पड़ती हैं और यदि उस विनाश का आलिंगन करने की अभीप्सा हमारे हृदय में न हो तो इतना तो हम सहजता से अनुभव कर ही सकते हैं कि वर्तमान परिस्थितियाँ अपने स्वरूप में अविलंब परिवर्तन की माँग करती हैं।

ऐसा कहने के पीछे का कारण स्पष्ट है कि आज मानवता का काफिला जिस दुराहे पर आकर खड़ा हो गया है, वहाँ पर हमारे सम्मुख दो ही विकल्प हैं—एक तरफ तो संपूर्ण, वीभत्स विनाश है तो दूसरी तरफ समग्र, समुन्नत भविष्य है। एक तरफ की संभावना विनाश की, विध्वंस

की, विप्लव की संभावना है तो दूसरी तरफ की संभावना सुख की, शुभ की, मंगल की, कल्याण की संभावना है और वर्तमान समय इनमें से मंगलमयी संभावना के चयन का समय है और उसी चयन को दूसरे शब्दों में परमपूज्य गुरुदेव के द्वारा प्रदत्त युगनिर्माण योजना कहकर पुकार सकते हैं।

आज का समय भाग-दौड़ का, गति का समय है और इस प्रवाह में सभी कुछ तेजी से भागता चला आ रहा है, चाहे उसका नाम पतन और विनाश ही क्यों न हो? कारण जो भी हों, पर समाधान तो एक ही है। समाधान स्पष्ट है कि यदि समय रहते वर्तमान परिस्थितियों का प्रतिरोध न किया गया और इनके परिवर्तन की व्यवस्था न बनाई गई तो मानवता के सफर पर कब पूर्ण विराम लग जाएगा, कहा नहीं जा सकता है। आज व्यापक जनसंहार के और समूचे विनाश के इतने सरंजाम इनसान ने जुटा लिए हैं कि पलक झपकने का समय मिले, उससे पहले ही कब एक व्यक्ति का पागलपन इस धरती को मरघट में, वीराने में बदल देगा, कहा नहीं जा सकता है।

यदि इनसान सामूहिक आत्महत्या न भी करे दोस्तों तो जिस तरह का जीवन, जिस तरह का वातावरण, जिस तरह की मानसिकता, हम आने वाली पीढ़ियों के खाते में छोड़कर जा रहे हैं—उन्हीं में कौन-सी प्रफुल्लता सुरक्षित रह गई है। यदि छटपटाते हुए, बेचैनी के साथ, चिढ़ते-कुढ़ते जीवन जीने का नाम ही मानव जीवन है तो इससे अच्छा तो पशु का जीवन मिल जाना है। जिस तरह का जीवन आज मनुष्य जीता हुआ दिखाई पड़ता है, उसमें न तो आत्मसंतोष का भाव रह गया है और न लोक-कल्याण का।

जीवन की सम्यक समझ रखने वाला प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि मनुष्य के जीवन का उद्देश्य इतना क्षुद्र, इतना संकुचित नहीं हो सकता कि जहाँ पर जीवन की उच्चतर संभावनाएँ निकृष्टता की बेड़ियों में पड़कर अपना दम ही तोड़ दें। मनुष्य के जीवन के मिलने का वास्तविक आनंद ही तब है, जब इसके भीतर से उच्चता एवं उत्कृष्टता का कमल खिलता है। मानव के जीवन को आनंद महामानव बनने पर ही मिल पाता है और उसी सौभाग्य को हर मनुष्य के जीवन में अवतरित कर देने के उद्देश्य से परमपूज्य गुरुदेव ने युग निर्माण योजना का चिंतन सभी को प्रदान किया।

इस योजना के केंद्र में उद्देश्य मनुष्य का भावनात्मक नवनिर्माण है। वैसा करने के पीछे उद्देश्य एक ही था कि कोई कितनी भी भौतिक सुसज्जा प्राप्त कर ले, जब तक आत्मिक उत्कृष्टता के स्तर में वृद्धि नहीं होती, तब तक आंतरिक संतोष की प्राप्ति नहीं हो पाती है। इनसान का वास्तविक पराक्रम उसके सद्गुणों की वृद्धि का पराक्रम है।

परमपूज्य गुरुदेव ने युग निर्माण योजना के जिस चिंतन को प्रदान किया उसके मूल में एक ही भाव है कि वैभव की तुलना में व्यक्तित्व का, संपत्ति की तुलना में संस्कृति का और संपदा की तुलना में संस्कार का मूल्य कई गुना ज्यादा है। जब तक व्यक्ति के व्यक्तित्व का रूपांतरण नहीं हो पाता, तब तक समाज का परिवर्तन संभव नहीं है। धरती पर स्वर्ग का वातावरण आता ही तब है, जब उसके भीतर के देवता का जागरण होता है। ऐसे जाग्रत व्यक्तित्वों को संगठित, संघबद्ध, एकत्र और सशक्त बनाने वाली योजना का नाम युगनिर्माण योजना है। ❑

स्वामी रामकृष्ण परमहंस से शिष्यों ने पूछा—"अध्यात्म पथ पर किस प्रकार के व्यक्ति चल पाते हैं?" वे बोले—"अध्यात्म पथ पर चार प्रकार के व्यक्ति आगे बढ़ते हैं। पहला है प्रवर्तक—वह अध्यात्म के विषय में थोड़ा पढ़ता, थोड़ा सुनता है। दूसरा है साधक—वह परमात्मा को पुकारता, उनका ध्यान-चिंतन और नामगुण-कीर्तन करता है। तीसरा है सिद्ध—जिसे हृदय में परमात्मा का अनुभव हुआ है, उनके दर्शन हुए हैं। चौथा है सिद्धों का सिद्ध—जो सदा परमात्मभाव में ही रहता है, जैसे—चैतन्य महाप्रभु। भावनाएँ प्रगाढ़ होती हैं तो श्रद्धा मजबूत होती है और उसी के अनुरूप मनुष्य अध्यात्म पथ पर आगे बढ़ता चलता है।"

तपोनिष्ठ, युगद्रष्टा-स्त्रष्टा, गुरु प्रज्ञा अवतार है।
बजे समर्पण की फिर सरगम, श्रद्धा में शक्ति अपार है॥
सच्ची श्रद्धा से ही साधक
आत्मज्ञान को पाता है,
जगमग आत्मज्योति जलती है
गुरु से जब जुड़ जाता है,
करे अभीप्सा ज्ञान कर्म की, भवरोगों का उपचार है।
बजे समर्पण की फिर सरगम, श्रद्धा में शक्ति अपार है॥
परमानंद प्रदाता गुरुवर
गुरु से प्रीति लगाएँ हम,
गुरु को आत्मसमर्पण करके
गुरु पूर्णिमा मनाएँ हम,
मन के जीते जीत यहाँ पर, मन के हारे हार है।
बजे समर्पण की फिर सरगम, श्रद्धा में शक्ति अपार है॥
गुरुवर की हम बनें भुजाएँ
श्रद्धा को मजबूत करें,
कल्मष-कषाय, कुसंस्कारों से
अतंर्मन को दूर करें,
युग को श्रेष्ठ बनाने को ही, गुरु का साहित्य भंडार है।
बजे समर्पण की फिर सरगम, श्रद्धा में शक्ति अपार है॥
अनुशासन में चलें निरंतर
साधन-प्रतिभा अर्पण करके,
लक्ष्य प्राप्ति के लिए प्रेम-
श्रद्धा से बढ़ें, समर्पण करके,
प्रज्ञा प्रखर-सजल श्रद्धा को, सुमनों का सुंदर हार है।
बजे समर्पण की फिर सरगम, श्रद्धा में शक्ति अपार है॥

— विष्णु शर्मा 'कुमार'

पर्यावरण संरक्षण एवं 600वाँ रविवासरीय वृक्षारोपण कार्यक्रम (गायत्री परिवार यूथ ग्रुप-कोलकाता)
देव संस्कृति विश्वविद्यालय में संपन्न

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

प्र. ति. 01-06-2022
Regd. N0. Mathura-025/2021-2023
Licensed to Post without Prepayment
N0. : Agra/WPP-08/2021-2023
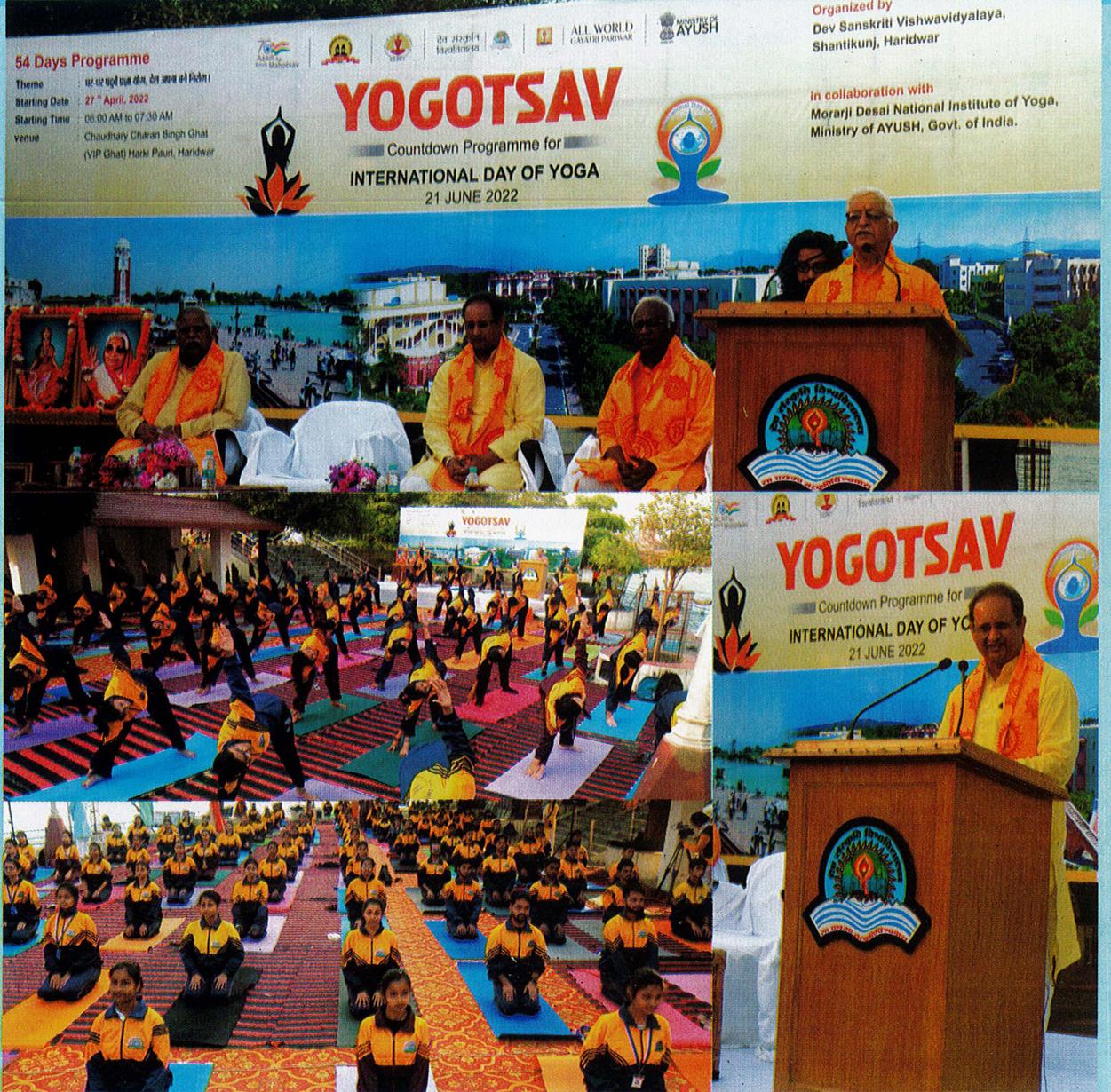
देव संस्कृति विश्वविद्यालय की अगवाई में योगोत्सव 2022 का आयोजन
हरिद्वार (उत्तराखंड) में संपन्न

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक – मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा–281003 से प्रकाशित। संपादक – डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूरभाष–0565-2403940, 2402574, 2412272, 2412273 मो बा.–09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ईमेल– akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org